भारतीय प्रतिमा-विज्ञान

भारतीय प्रतिमा-विज्ञान

श्रीमती कमलेश सिन्हा
एम. ए.

एवं

डॉ० दिनेशचन्द्र
एम. ए. (पुरातत्व शास्त्र), एम. ए. (समाजशास्त्र),
एल. एल. बी., डी. एल. एल., आई. सी. एल.,
पी. एच. डी. (पुरातत्वशास्त्र)

अयन प्रकाशन, नई दिल्ली

अयन प्रकाशन
1/20, महरौली, नई दिल्ली-110030

बिक्री कार्यालय :
1619/6 बी, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण : शान्ति स्वरूप

मूल्य : सत्तर रुपये

प्रथम संस्करण : 1990 © लेखकद्वय

Bharatiya Pratima Vigyan
by Smt. Kamlesh Sinha & Dr. Dinesh Chandra

मुद्रक : प्रदीप प्रिन्टर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

भारत प्रेमी

महान इतिहासकार

प्रो० ए. एल. बासम को

स्मृति में—

जो सदा ही मेरी

प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, रहेंगे

प्राक्कथन

मैं इसे विडम्बना ही कहूंगी कि हमारी पुरातन कला, साहित्य एवं विज्ञान के अर्जित कोष को भारतीय चिन्तको की अपेक्षा विदेशियो ने ही अधिक सहेजा और सवारा है। शायद इसीलिए अधिकांशतः इन विषयो पर प्रामाणिक ग्रन्थ आग्ल भाषा मे उपलब्ध होते हैं। इसका एक और कारण भारतवर्ष का एक लम्बे समय तक अग्रेजो द्वारा शासित होना भी रहा है।

यद्यपि अभी तक हम दासता की दारुण मानसिकता से पूरी तरह उबर नही पाये हैं किन्तु एक हद तक अपनी भाषाओं के प्रति जागरूक अवश्य हो रहे हैं। हम प्रयासरत हैं कि उच्च शिक्षा और अनुसन्धान के लिए हमारी राष्ट्रभाषा माध्यम बने। उपरोक्त कथन से हमारा आशय आंग्ल भाषा का बहिष्कार करना नही है, अपितु मातृभाषा के प्रति सहज ललक और सर्वसुलभता से है।

भले ही यह पुस्तक प्रतिमा विज्ञान के जिज्ञासुओ की तृष्णा शान्त न कर सके, किन्तु प्रतिमा विज्ञान को समझने की दिशा अवश्य प्रदान करती है। इसमे समाहित अध्याय ऐसी वर्णमाला है जिन्हे पढे बिना आगे बढ़ना शायद सम्भव नही। इस पुस्तक को लिखने का आशयमात्र ही इतना है।

आग्ल भाषा मे इस विषय पर उच्च कोटि के विद्वानों की अनेक कृतियां उपलब्ध हैं जो हमे प्रतिमा विज्ञान की पर्याप्त जानकारी देती है। इन पुस्तकों मे सर्वोल्लेखनीय पुस्तकें टी. ए. जी. राव महोदय की 'एलीमेन्ट्स आव् हिन्दू आइकनोग्राफी' तथा डॉ० जितेन्द्रनाथ बनर्जी की 'दि डेवलेपमेन्ट आव् हिन्दू आइकनोग्राफी' हैं। मैंने पग-पग पर इन पुस्तको की सहायता ली है। मैं सर्वश्री गुनवेडेल, जे. फरगसन, आर.जी. भण्डारकर, ए. के. कुमारस्वामी, एच. सरस्वती, बी. बी. विद्याविनोद, आर. पी. चन्दा, द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, वासुदेव शरण अग्रवाल, इन्दुमति मिश्र, उपेन्द्र ठाकुर, कचन सिन्हा, एलीस गेन्ती, सम्पूर्णानन्द, रामाश्रय अवस्थी आदि विद्वानों को, जिनका इस क्षेत्र में विशेष योगदान है, आभारी हूं जिनकी कृतियों के अभाव मे मेरा इस पुस्तक को लिखने का संकल्प अधूरा रह सकता था। डॉ० दिनेशचन्द्र ने इस पुस्तक को लिखने मे पग-पग पर मेरा मार्ग प्रशस्त किया है, और पुस्तक को सुन्दर रूप प्रदान किया है। पुस्तक में दिए गए देवचित्र भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के सौजन्य से उपलब्ध हुए हैं, जिनके लिए मैं पुरातत्व विभाग की आभारी हू।

इस अनुष्ठान में सर्वश्री पी. एम. द्विवेदी, एच. एस. बोरा, राजगोपाल सिंह, जगदीश जैन एवं जे. पी. शर्मा से सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूं। इस पुस्तक का मनोरम स्वरूप देने का श्रेय इसके प्रकाशक और मुद्रक को जाना चाहिए।

यदि यह पुस्तक प्रतिमा विज्ञान के प्रति जिज्ञासु प्रबुद्ध पाठकों एवं विद्यार्थियों के लिए किंचित् भी उपयोगी सिद्ध हो सकी, तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूंगी।

नई दिल्ली —कमलेश सिन्हा

आमुख

सहज, सरल एवं सुरुचिपूर्ण भाषा मे प्रतिमा विज्ञान जैसे गूढ विषय से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को जिस खूबी के साथ श्रीमती कमलेश सिन्हा एव डॉ० दिनेशचन्द्र ने इस पुस्तक द्वारा प्रस्तुत किया है, वह वास्तव मे सराहनीय है तथा वे धन्यवाद के पात्र हैं। वैसे तो प्रतिमा विज्ञान पर अनेक स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों ने कार्य किया है किन्तु उन्होंने अपनी प्रस्तुति का माध्यम मुख्यतः आग्ल भाषा ही रखा है। परिणामतः मात्र आग्ल भाषा के जानकार ही इन ग्रन्थो से परिचित हो सके। अपनी मातृभाषा मे लिखी गई यह पुस्तक वाकई अपने मकसद में कामयाब हो सकेगी तथा मेरा यह विश्वास है कि ज्यादा से ज्यादा पाठकगण इससे फायदा उठा सकेंगे।

कम से कम शब्दों मे किन्तु विषय सम्बन्धी अधिकाधिक जानकारी उपलब्ध कराने मे श्रीमती सिन्हा एवं डॉ० दिनेशचन्द्र के इस प्रयास से विषय पर उनका गहन अध्ययन एवं विद्वता स्वतः परिलक्षित होती है। उन्होने प्रतिमा विज्ञान जैसे अथाह सागर का जैसे मन्थन कर रख दिया हो। प्राचीन शिल्प शास्त्रो, आगमों एवं पुराणो मे वर्णित प्रतिमा विषयक सन्दर्भों तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त मूर्तियो का भी पुस्तक में यथास्थान उल्लेख किया गया है। प्रमुख देवी-देवताओं के अतिरिक्त गौण देवी-देवताओ को भी पुस्तक मे समुचित स्थान देने का प्रयास किया गया है।

अन्त में लेखकों को मैं एक बार पुनः धन्यवाद करना चाहूंगा कि उन्होंने मुझे इस गूढ़ विषय सम्बन्धी पुस्तक का आमुख लिखने के योग्य समझा। मैं इस पुस्तक को प्रतिमा विज्ञान के सभी विद्यार्थियो के लिए तथा अन्य उन सभी के लिए अभिस्तावित करता हूं जो भारत के अतीत को और अधिक गम्भीरता और गहनता से जानना और समझना चाहते हैं।

निदेशक, विदेश अभियान,
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,
नई दिल्ली

—डॉ० डब्ल्यू. एच. सिद्दीकी

प्रकाशकीय

'भारतीय प्रतिमा-विज्ञान' नामक यह कृति सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। इस विषय पर अंग्रेज़ी में तो अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं किन्तु हिन्दी में ऐसे प्रकाशन बहुत कम हैं। जो पुस्तकें उपलब्ध भी हैं वे विषय के सम्पूर्ण ज्ञान को समाहित नहीं करतीं। इस कारण पाठक को कई पुस्तकों का सहारा लेना पड़ता है, फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं हो पाता।

इस पुस्तक में भारतीय प्रतिमा-विज्ञान सम्बन्धी विशद् ज्ञान को सरल, सुगम एवं बोधगम्य तरीके से प्रस्तुत किया गया है। लेखकद्वय अपने क्षेत्र के अधिकारी विद्वान् हैं और उन्होंने इस पुस्तक के माध्यम से विषय को प्रस्तुत करने में गागर में सागर समाहित करने का प्रयास किया है।

इस पुस्तक में भारतीय प्रतिमाओं का न केवल मनोरम वर्णन किया गया है अपितु उनकी मानव-जीवन से संबद्धता एवं वैज्ञानिक आधार को उत्कृष्ट रूप से उजागर भी किया गया है। मैं अपने अल्प ज्ञान के आधार पर यह कह सकता हूं कि इस महत्त्वपूर्ण पहलू को आज तक इतनी सम्पूर्णता में अन्यत्र कहीं उजागर नहीं किया गया। अधिकारी लेखकों का इस क्षेत्र में यह विशेष योगदान माना जा सकता है।

मेरा यह मानना है कि ज्ञान को जब तक जीवन से न जोड़ा जाए, वह जनता-जनार्दन के लिए लाभकारी नहीं और विद्वता या तकनीक की वेदी पर इस पक्ष की आहुति नहीं चढ़ानी चाहिए क्योंकि इससे विद्वान जनमानस से परे हटता है और एक संकुचित दायरे में सिमटकर रह जाता है। श्रीमती कमलेश सिन्हा एवं डॉ० दिनेशचन्द्र अपने इस उद्देश्य में सफल सिद्ध हुए हैं। सिद्दीकी साहब ने भी अपनी भूमिका में इस तथ्य की पुष्टि की है।

पुस्तक में विष्णु, शिव, देवी एवं सूर्य की प्रतिमाओं का जितना वैज्ञानिक, मनोरम एवं उत्कृष्ट विवरण किया गया है, वह शायद बहुत कम पुस्तकों में ही उपलब्ध है। सूर्य के वैज्ञानिक पहलू को बहुत ही सुन्दर ढंग से उजागर किया

गया है। भाषा की सरलता, विषय की पूर्णता एवं गहनता पुस्तक के विशेष लक्षण हैं।

मैं आशा करता हूं कि पुस्तक न केवल प्रतिमा विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी अपितु उन समस्त भारतवासियों के लिए भी लाभदायक एवं ज्ञानवर्धक होगी जिन्हें भारत की संस्कृति, धर्म एवं कला से प्रेम है।

—भूपाल सूद

विषय-सूची

चित्र-सूची

---

6. महिषासुर मर्दनी

१ शिरस्त्र

5. दीप लक्ष्मी

6. महिषासुर मर्दनी

7. गणेश

8. कार्तिकेय

9. सूर्य : रथारूढ़

10. सूर्य : खड़ी अवस्था में

7. गणेश

अध्याय : एक

प्रतिमा विज्ञान का अध्ययन

वैचारिक सम्प्रेषणता हमारी मूलभूत आवश्यकता रही है। जब न कोई भाषा थी और न लिपि तब भी मनुष्य संकेतो के माध्यम से अपने उद्‌गार दूसरों तक पहुंचाते रहे हैं। इन्हीं उद्‌गारो को आने वाली पीढी के लिए सहेज कर रखने की आवश्यकता के अनुरूप विभिन्न कलाओ का सृजन किया गया। इन्ही विषयों मे से अत्यधिक लोकप्रिय और प्रचलित कला प्रतिमा विज्ञान भी है।

जहा वाणी मूक हो जाए, जिन पर नज़र पड़ते ही मनुष्य स्वयं प्रतिमा बन कर रह जाए, जिन्हें देखकर हम हज़ारों वर्ष पुराने अपने स्वर्णिम अतीत की घाटियो मे उतर जाएं, ऐसी प्रतिमाओ का विश्लेषण निश्चय ही एक रोचक एवं गुरुतर विषय हो जाता है।

प्रतिमा विज्ञान मे मनुष्य के धर्म के प्रति झुकाव का, जिसका प्रदर्शन उसने कला के माध्यम से किया है, अध्ययन किया जाता है। प्रतिमा विज्ञान का क्षेत्र मन्दिर की मूर्तियों तक ही सीमित न होकर, मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बद्ध है। इस विज्ञान के अंतर्गत हम न केवल शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य, देवी, बुद्ध, तीर्थंकर, यक्ष एवं यक्षणियो की मूर्तियों का ही अध्ययन करते हैं अपितु अजन्ता की गुफाओं में की गई चित्रकारी, सांची के स्तूप एवं सारनाथ स्तम्भ पर सुसज्जित पशु मूर्तियों का भी अध्ययन करते हैं।

कला प्रारम्भ से ही धर्म मे अभिभूत रही है। हमारी समस्त कलाओ और साहित्य की जड़ें हमारी धार्मिक मान्यताओ मे पैठी हैं। विद्वान गुनवेडेल ने ठीक ही कहा है कि किसी भी स्थान पर कला के विकास का मुख्य आधार धर्म ही रहा है और धार्मिक प्रवृत्ति, जिसका भारतीय जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है, कला की पथ प्रदर्शक रही है। ढेलमेता भी अपनी पुस्तक 'रेलीजन एण्ड आर्ट' के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि विश्व के प्रायः सभी देशो मे कला एवं धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

भारतीय समाज मे प्रतिमाओं का अभिषेक, शृंगार और पूजन आदि

धार्मिक अनुष्ठानो की महत्त्वपूर्ण क्रियाएं हैं । यहां तक कि जो समुदाय निरंकार ब्रह्म की उपासना करते थे वे भी प्रतिमाओ से निरासक्त नही रह पाए और किसी न किसी रूप मे इस कला के कायल रहे हैं । बौद्ध और जैन धर्म इस तथ्य के प्रमाण हैं । प्रसिद्ध कलाविद् फूशे अपनी पुस्तक 'दि बिगनिंग आव् बुद्धिस्ट आर्ट' मे लिखते हैं कि बौद्ध कला के प्रादुर्भाव एव विकास के मूल मे बौद्धो का धार्मिक विश्वास एवं आस्था है ।

किसी भी सभ्यता मे मूर्तियां धार्मिक विश्वासको परिलक्षित करती हैं । आर्य सभ्यता के लोग मूर्ति बनाते थे या नही, इस तथ्य का ज्ञान ही हमे उनकी धार्मिक आस्था एवं धर्म के रूप का बोध करा सकता है । किन्ही भी आराध्य मूर्तियो का क्रमबद्ध एव तार्किक विश्लेषण अनेक भ्रामक विचारधाराओ को निर्मूल कर देता है । फरगसन के विचार मे सांची, भरहुत एवं अमरावती के लोग सर्प एव वृक्ष पूजक थे किन्तु अन्य विद्वानो द्वारा किए गए शोधो से हमे ज्ञात होता है कि फरगसन का यह विचार कितना भ्रामक है । साची की पेटिकाओ मे से एक पर क्षत्र सहित अश्व एवं क्षत्र रहित अश्व भगवान बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण का द्योतक है । विभिन्न चित्रों मे नाग, यक्ष, यक्षिणी आदि बुद्ध भगवान के आराधक के रूप मे प्रदर्शित किए गए हैं । ऐसा लगता है कि फरगसन तब सत्य के आचल को छू रहे हैं जब वह यह कहते हैं कि ऐसे भी अनेक चित्र हैं जिनका बुद्ध की जीवन की घटनाओ से सम्बन्ध है ।

प्रतिमा विज्ञान हमे तत्कालीन सामाजिक परिवेश की झांकी के दर्शन कराता है । इससे हमे सामाजिक सम्पन्नता, उत्थान और पतन का भी भास होता है । यहा तक कि सामाजिक और धार्मिक चेतना का विकास और वैमनस्य का प्रस्फुटन भी मूर्ति के माध्यम से ही हुआ है । शिव के शरभ अवतार ने नरसिंह अवतार को जन्म दिया । किन्तु साथ ही साथ दो धार्मिक सम्प्रदायों का सम्मिश्रण एवं सामजस्य भी देखने को मिलता है । बादामी स्थित हरिहर मूर्ति, जिसमे बाए विष्णु एव दाएं शिव हैं, वैष्णव एव शैव धर्म मे सामजस्य लाने की भावना का प्रदर्शक है। अर्धनारीश्वर का निर्माण शिव पूजको एवं शक्ति पूजको मे सामजस्य की भावना ही पैदा करने के लिए किया गया । कलकत्ता संग्रहालय मे एक शिवलिंग है जिसके चार मुखो पर विष्णु, दुर्गा, सूर्य एवं गणेश क्रमशः अंकित हैं । यह पांच धर्म सम्प्रदायो मे सामजस्य की भावना का प्रदर्शन करता है । उड़ीसा मे लकुलीश शिव को महात्मा बुद्ध की तरह पद्मासन पर स्थित शेष-शायी रूप मे प्रदर्शित करना प्रचलित है । इस प्रकार की मूर्तियो के लक्षण उत्तरकर्णागम, सुप्रभेदागम तथा शिल्परत्न मे वर्णित हैं ।

कुछ मूर्तियां तो कला के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, उदाहरण के लिए सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा, सारनाथ का सिंह स्तम्भ आदि । ये मूर्तियां

तत्कालीन कला स्तर पर प्रकाश डालती हैं। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा यह बताती ह कि गुप्त युग में मूर्तियों को कितना सुन्दर एवं भव्य बनाया जाता था। बंगाल में बनाई गई पाल वंशीय बुद्ध प्रतिमाएं यह बताती हैं कि गुप्त युग की समाप्ति के बाद ही कला अपने चर्मोत्कर्ष पर न रह सकी।

प्रतिमा विज्ञान का अध्ययन ऐतिहासिक अन्वेषण के लिए भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। प्राय: मूर्तियों पर अभिलेख खुदे रहते हैं जो कि समय, तिथि और राज्यकाल बताते हैं। कुषाण काल की मूर्तियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन लाभप्रद सिद्ध हुआ है। सीथियन काल की इतिहास मर्मज्ञा डॉक्टर वान लोहुजन हेल्यु ने कुषाण काल की लगभग सभी प्रतिमाओ का अध्ययन किया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुंची हैं कि इन प्रतिमाओं के लेखों मे अंकित तिथियों मे सौ की संख्या अधिक जोड़कर पढना चाहिए। उनका मत है कि अधिकतर अभिलेखो में सौ की संख्या घटाकर तिथि लिखी गई है।

उपरोक्त तथ्य उजागर करते हैं कि प्रतिमा विज्ञान का अध्ययन मन्दिर की मूर्तियों तक ही सीमित न होकर मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बद्ध है। इन प्रतिमाओ के अध्ययन मे हमारी संस्कृति, हमारा गौरवशाली इतिहास जीवन्त हो उठता है।

अध्याय : दो

प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन के स्रोत

प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन के हेतु उपलब्ध साधनो को हम मुख्यत: दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं :—

क. पुरातात्विक साधन, ख. साहित्यिक साधन ।

पुरातात्विक साध

पुरातात्विक साधन मे प्रतिमाएं, सिक्के, मुद्राए एव अभिलेख उल्लेखनीय हैं। इनका क्रमश: वर्णन आवश्यक है ।

प्रतिमाएं––प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन का मुख्य स्रोत उपलब्ध प्रतिमाएं ही रही हैं। प्रतिमाओ के वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा ही हम प्रतिमा निर्माण कला के विकास तथा प्रतिमा पूजा की परम्परा के प्रचलन के विषय मे ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्राचीन काल मे निर्मित विभिन्न प्रकार की प्रतिमाए प्राप्त हुई हैं लेकिन ये अधिकतर खण्डित अवस्था मे हैं। यही कारण है कि ये प्रतिमाएं तत्कालीन देवी तथा देवताओ के प्रामाणिक रूपो का प्रदर्शन करने मे असमर्थ हैं। इसका लाभ उठाते हुए अनेक मिथक भी विद्वानों द्वारा जोड़े गए हैं। कहीं-कही ये परस्पर विरोधी भी नज़र आते हैं।

इन प्रतिमाओ के खण्डित होने का मुख्य कारण समय-समय पर भारत पर विदेशियो द्वारा आक्रमण समझा जाता है । इन्ही विदेशी आक्रमणो की वजह से हम अधिकतर प्रतिमाओं के नैसर्गिक सौन्दर्य से वचित रह जाते हैं।

सिन्धु घाटी सभ्यता के काल की प्राप्त प्रतिमाएं हमे अपने लौकिक रूप का परिचय देती हैं। ये प्रतिमाए इस तथ्य का प्रमाण हैं कि यहां के निवासी मूल रूप से प्रतिमा पूजक और प्रतिमा सृजन के विशेषज्ञ थे। यहा मातृदेवी की प्रतिमाएं अधिक सख्या मे प्राप्त हुई हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि यहा के निवासी मातृ शक्ति के उपासक थे । यह एक ऐतिहासिक सत्य भी हो सकता है कि उस समय वंशानुगत परम्पराओ के मूल मे पुरुष की अपेक्षा स्त्रियो को ही वरीयता

प्राप्त थी। साथ ही साथ मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में प्राप्त पशुपति शिव की प्रतिमाए इस बात का भी जीता-जागता प्रमाण हैं कि सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग पशुपति शिव की पूजा करते थे।

चित्रकला—चित्रकला प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत है। प्राचीन चित्रकला द्वारा हम तत्कालीन देवी-देवताओं के स्वरूप के विषय मे ज्ञान प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए अजन्ता की कृतिया भगवान बुद्ध का स्मरण कराती हैं। इसी प्रकार हिन्दू देवी-देवताओ के एलोरा की गुफाओं मे अनन्य उदाहरण हैं। जगन्नाथपुरी के मन्दिरो की चित्रकारी देखते ही बनती है। प्रतिमा विज्ञान का विपय कोप यहा बिखरा पड़ा है।

सिक्के—सिक्को का प्रचलन चौथी तथा पाचवी सदी ई० पूर्व में ही माना जाता है जबकि बी० ए० स्मिथ इसे सातवी सदी ई० पूर्व तथा डॉक्टर भंडारकर इसे 1000 ई० पूर्व ही स्वीकार करते हैं। पंचमार्क सिक्के सर्वप्राचीन माने जाते हैं। विद्वानो का अनुमान है कि पचमार्क सिक्को का प्रचलन व्यापारी सघ द्वारा हुआ न कि राजाओं द्वारा, किन्तु अब पचमार्क सिक्के अधिक मात्रा मे प्राप्त हो रहे हैं और इसका विधिपूर्वक अध्ययन डॉक्टर जितेन्द्रनाथ बनर्जी तथा डॉक्टर परमेश्वरी लाल गुप्ता द्वारा किया गया है। इन शोधो से यह भी स्पष्ट हो रहा है कि इन चिह्नो का विशेप महत्त्व था। यह कहना असगत न होगा कि ये चिह्न केवल पहचान करने के लिए मात्र व्यापारियो द्वारा ही नही लगाए जाते थे बल्कि ये सिक्के एक सुनिश्चित योजना के अन्तर्गत बनाए गए थे। यही कारण है कि ये सिक्के एक ही शुद्ध धातु के, एक ही आकार एव एक ही वजन के हैं। इन सिक्को मे एक ही प्रकार के चिह्न भी अकित किए गए हैं। एक आकार, एक वजन एव समान चिह्न के सिक्के बनाना किसी एक राजसी शक्ति के लिए ही सम्भव था सैकड़ो या हजारो व्यापारियो द्वारा नही। व्यापारियो की रुचि, देश-काल की अवस्था, आर्थिक स्थिति, वजन का हिसाब बड़ा भारी अन्तर ला सकता था।

इन सिक्को पर विभिन्न प्रकार के सकेत दृष्टिगोचर होते हैं। मुख्यतः सिक्को पर पशुओ का चित्रण किया गया है जिनको विद्वानो ने देवताओ का पशु रूपों मे अवतार माना है। बाद के सिक्को पर हम देवी-देवताओ के रूप का चित्रण पाते हैं। उदाहरणार्थ गुप्त कालीन सिक्को पर कार्तिकेय, विष्णु तथा शिव आदि देवताओ की आकृति का चित्रण किया गया है। कनिष्क के सिक्कों पर विभिन्न देवी-देवताओं का रूपाकन देखने को प्राप्त होता है। सिक्को पर प्राप्त विभिन्न देवी-देवताओं के रूपाकन के आधार पर हमे उसके सर्वधर्म समभाव की रुचि का आभास मिलता है। कनिष्क के सिक्को पर बुद्ध के स्वरूप के चित्रण के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म के देवताओं तथा यूनानी देवताओं का भी

चित्रण किया गया है जो कि इस बात की पुष्टि करते है कि कनिष्क ने अपने सिक्को के पिछले भाग पर विभिन्न धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं का रूपांकन कराया था और भारत के समस्त धर्म-अनुयायियो को अपने साथ लेकर चला था। धार्मिक सहिष्णुता ने ही तो सदा से शासक को जनप्रिय बनाया है।

सिक्कों का तिथि क्रम सुविधापूर्वक निश्चित किया जा सकता है। यदि सिक्कों पर तिथि क्रम का अकन नही प्राप्त होता हैं तो भी हम उनके प्रचलन की तिथि उन राजाओ के समय का ज्ञान कर निकाल सकते हैं जिन्होने इन्हें प्रचलित किया हैं। जिन स्थानो पर देवी तथा देवताओ की प्रतिमाए नही प्राप्त हुई हैं वहा से प्राप्त सिक्के उन देवी तथा देवताओं की प्रतिमा विज्ञान के लक्षण जानने मे सहायता करते है जिनकी वहा पूजा की जाती थी। प्रारम्भिक सिक्को पर अकित देवी तथा देवताओ के स्वरूप एव लक्षण उसी समय मे रचित दैविक प्रतिमाओ के स्वरूप तथा लक्षण से समानता रखते हैं। गाधार स्कूल द्वारा रचित पाषाण बुद्ध प्रतिमाओ के स्वरूप मे तथा कनिष्क के सिक्को पर अकित बुद्ध के स्वरूप मे समानता दृष्टिगोचर होती है। पचमार्क सिक्को पर अकित विभिन्न प्रकार के संकेतो से तत्कालीन देवी-देवताओ के प्रदर्शन करने के ढग तथा प्रचलित भारतीय शैली के विषय मे ज्ञान प्राप्त होता है। सिक्को पर अकित सकेतो के विषय मे कुमारस्वामी का कथन है कि इन सकेतो का महत्व, जिनमे से अधिकतर आज भी प्रचलित हैं, इस बात मे है कि वे एक निश्चित प्रारम्भिक भारतीय शैली का प्रदर्शन करते हैं। प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन हेतु विभिन्न प्रकार के सिक्को पर सकेतो तथा दैविक स्वरूपो के अकन के विषय मे ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

अभिलेख—अभिलेख प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन को आगे बढाने मे सहायक हैं। इन अभिलेखो मे कही-कही देवी-देवताओ की प्रतिमा विज्ञान के लक्षणो का वर्णन किया गया है तथा साथ ही इन देवी तथा देवताओ के मन्दिरो के निर्माण का भी वर्णन प्राप्त हाता है। उदाहरणार्थ द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के घोसुन्डी अभिलेख मे संकर्षण तथा वासुदेव के मन्दिर के चारो ओर शिला प्रकार की स्थापना कराए जाने का उल्लेख मिलता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस मन्दिर मे अवश्य ही सकर्षण तथा वासुदेव की मूर्तिया होंगी। केवल लेख का अध्ययन मात्र ही विष्णु पूजा के विश्वास को स्पष्ट कर देता है। इन अभिलेखो मे बेसनगर, घोसुन्डी, हाथीवाडा, मथुरा, शोडास, नानाघाट इत्यादि लेख उल्लेखनीय हैं। अधिक सख्या मे प्राप्त गुप्तकालीन अभिलेखो मे भवानी, कात्यायनी, शिव, स्वामी महासेन, विष्णु, बुद्ध एव महावीर के मन्दिरो या मठो के विषय मे वर्णन प्राप्त होता है।

मुद्राएं—मुद्राए प्रायः विभिन्न धार्मिक चिह्नो का प्रदर्शन करती है जिन्हें

विभिन्न राजाओ ने समय-समय पर राजमुद्रा के रूप मे घोषित किया। गुप्त वंश के महान शासक समुद्रगुप्त ने अपनी राजमुद्रा पर गरुड़ का चित्रण कराया था जो कि उसकी वैष्णव धर्म के प्रति निष्ठा का प्रमाण है। गरुड़ की प्रतिमा का प्रदर्शन बहुत से गुप्त कालीन स्वर्ण एवं रजत सिक्को पर हुआ है। चन्देलों के सिक्कों पर लक्ष्मी की आकृति का अंकन प्राप्त होता है। लक्ष्मी भगवान विष्णु की पत्नी तो हैं ही साथ ही साथ धन और सम्पन्नता की देवी भी हैं। बंगाल के सेनवंशीय शासकों के ताम्रपत्रों पर अधिकतर देव सदाशिव की आकृति दृष्टि-गोचर होती है। सेन शासकों के आराध्य सदाशिव थे। चालुक्य वैष्णव थे, इसलए उनके सिक्कों पर धनुष की आकृति अंकित है।

दक्षिण बंगाल के शासक महासामन्त श्रीमद् दोम्मनपाल के ताम्रपत्रों के पछले भाग पर बड़ी ही आकर्षक मुद्रा मे रथ मे बैठे हुए नारायण विष्णु तथा उनके गरुड़ का चित्रण किया गया हैं। मगध तथा बंगाल के पालवंशीय शासक की राजमुद्राओं पर बुद्ध देव आसीन हैं।

अनेक मुद्राएं ऐसी भी प्राप्त हुई हैं जो कि राजमुद्राएं नही प्रतीत होती है। ये साधारण व्यक्तियों द्वारा चलाई गई मालूम पड़ती हैं। इन मुद्राओं का चलन व्यापारीगण मे रहा होगा। इन पर मुख्यतः लक्ष्मी का अंकन देखने को मिलता है। ऐसी मुद्राए बहुत अधिक संख्या मे भीटा, बसाढ़ तथा राजघाट मे मिली हैं। इन मुद्राओ मे कुछ पर तिथियां हैं तथा कुछ ऐसी भी हैं जिन पर तिथि नही है, यद्यपि लिपि के अध्ययन द्वारा इनकी तिथि निर्धारित की जा सकती है।

प्रत्येक बौद्ध विहार की भी अपनी मुद्राएं होती थी। नालन्दा विहार का चन्ह धर्मचक्र भगवान बुद्ध के प्रथम उपदेश का स्मृति चिन्ह है। कुशीनगर तथा पावा मे बुद्ध की मृत्यु तथा दाह-संस्कार हुआ था। कुशीनगर स्तूप का चिह्न उनकी मृत्यु का चिन्ह तथा पावा का चिन्ह उनकी चिता का चिन्ह है। नालन्दा की मुद्रा पर बुद्ध चिन्ह चक्र के साथ ही लक्ष्मी की भी आकृति अंकित है। यह नालन्दा मठ की धार्मिक उदारता का प्रदर्शन करती है।

सर्वप्राचीन मुद्राए सिन्धु सभ्यता के अवशेषो से प्राप्त हुई हैं जिनकी संख्या पाच सौ पचास से भी अधिक है। इन मुद्राओ मे न केवल धार्मिक विश्वासो के विषय मे ही अपितु तत्कालीन सामाजिक जीवन की भी झलक देखने को मिलती है। ये मुद्राएं न केवल शिव तथा मातृ देवी के दर्शन देती हैं अपितु स्वास्तिक तथा अन्य आराध्यो की उपासना की ओर भी इंगित करती हैं।

साहित्यिक साधन

साहित्यिक साधनों को हम दो वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं—

क. साधारण प्रकार के साहित्यिक साधन

ख. प्रावैधिक प्रकार के साहित्यिक साधन।

क. साधारण प्रकार के साहित्यिक साधन—ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में बड़े रुचिकर विवरण प्राप्त होते हैं। वेदों के आधार पर हमें आर्यों के मध्य प्रतिमा पूजा के विकास के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। विद्वानों के अनुसार ऋग्वैदिक काल में प्रतिमाओं का निर्माण तो हुआ किन्तु आर्य उनकी पूजा नहीं किया करते थे। ऐसे ही अनेक तथ्यों को साहित्यिक साधन प्रकाश में लाते हैं। रामायण, पुराण, महाभारत तथा स्मृतियां भी प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन हेतु अत्यन्त सहायक ग्रंथ हैं। इन महाकाव्यों में यदा-कदा प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है जो कि तत्कालीन प्रतिमा विज्ञान के विकास की जानकारी देता है।

विदेशी यात्रियों के यात्रा विवरण भी हमारी सहायता करते हैं। बौद्ध तथा जैन साहित्य से भी तत्कालीन कला के विकास पर प्रकाश पड़ता है। हिन्दू धार्मिक परम्परा के उद्धरण बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में प्राप्त होते हैं जो कि प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

ख. प्रावैधिक प्रकार के साहित्यिक साधन—प्रतिमा विज्ञान के साहित्यिक साधनों में प्रमुख स्थान प्रतिमा वैज्ञानिक पाठ्य ग्रन्थों का है। इन ग्रन्थों में कलाकारों का जीवन पर्यन्त का अनुभव संग्रहित है। इस बिखरे हुए साहित्य को, जो कि मूर्ति कलाकारों की कला-कृतियों पर प्रकाश डालता है, क्रमबद्ध करने का प्रयास किया गया है। मत्स्य पुराण में अठारह वास्तुशास्त्र के विश्लेषकों का वर्णन है जिनमें विश्वकर्मा, माया, मग्नजीत, गार्ग एवं बृहस्पति प्रमुख हैं। मानसार में विभिन्न प्रकार के कलाकारों की उत्पत्ति का पौराणिक विवरण प्राप्त होता है। लेखक ने चार प्रकार के वर्गों के कलाकारों के पारस्परिक महत्त्व की व्याख्या की है एवं सर्वोत्तम स्थान भवन निर्माणक को दिया है। इस बात को विद्वान् गुनवेडेल और भी स्पष्ट कर देते है जब वह कहते है कि प्राचीन भारत की मूर्तियां न केवल सजावट का साधन थी अपितु सदा से ही वास्तुकला से जुड़ी हुई थी। वास्तु शास्त्र एवं तत्सम्बन्धित कलाओं का विवरण मत्स्य पुराण में मिलता है। बृहत संहिता के 56वें अध्याय में वराहमिहिर ने मूर्तियों के लक्षणों एवं मूर्ति निर्माण सम्बन्धी नियमों का वर्णन किया है। उन्होंने इस विषय के कुछ अन्य लेखकों जैसे मग्नजीत एवं वशिष्ठ का भी उल्लेख किया है। कश्यप द्वारा निर्मित शिल्प शास्त्र 'कश्यपिया' पुकारा गया है जो कि सुमद्भेद के नाम से भी जाना जाता है। सकलाधिकार ग्रन्थ के लेखक अगस्त्य है।

अन्य पाठ्य ग्रंथों, जिसमें विश्वकर्मावतार शास्त्र प्रमुख है, में भी इस विषय के अध्ययन के लिए सामग्री संग्रहित है। उन ग्रन्थों के उद्धरण भी, जो अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं, इस विषय के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। आगम,

शैवसंहिता एवं पंकरात्रों मे निहित अनेक महत्त्वपूर्ण भाग मन्दिर और मूर्ति निर्माण सम्बन्धी कार्यों के नियमो से सम्बन्धित हैं।

पौराणिक साहित्य का अध्ययन भी प्रतिमा विज्ञान का ज्ञान कराने के लिए अत्यन्तावश्यक है। इनमें केवल पौराणिक बातें ही संग्रहित नही हैं अपितु प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी बातें भी निहित हैं।

वराहमिहिर की बृहतसंहिता मे प्रतिमा विज्ञान का विवरण प्राप्त होता है। बृहतसंहिता के एक अध्याय में प्रतिमा स्थापन के नियम तथा द्वितीय अध्याय मे सामग्री के चुनाव तथा प्रतिमा रचना के विषय मे वर्णन प्राप्त होता है।

नीतिशास्त्रों मे भी प्रतिमा विज्ञान की सामग्री प्राप्त होती है। हम सुकरान्तिशास्त्र के अध्याय 4 तथा भाग 5 का उल्लेख भी कर सकते है।

हमारा यह विवरण अधूरा ही रहेगा यदि हम विभिन्न देवताओ के ध्यान मन्त्रों की ओर ध्यानाकर्षित न करें। ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देवताओ के विभिन्न ध्यान तथा साधनों मे तथा वज्रयान बौद्ध देवताओं के ध्यान व साधनो मे विभिन्नता देखी जा सकती है। देवताओ के ध्यान के ढंगो मे अन्तर है। ध्यान मन्त्रो से प्रतिमा वैज्ञानिक विवरण छांटा जा सकता है। इससे हमें देवों तथा देवियो की बाह्य आकृति का ज्ञान प्राप्त होता है। कहीं-कहीं पुराणों मे संग्रहित मन्त्रों में भी देवताओ की प्रतिमाओ का विवरण मिलता है जो कि प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन के हेतु अत्यन्त सहायक है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि प्रतिमा विज्ञान से सम्बन्धित साहित्य का अभाव नही था किन्तु समय के प्रभाव तथा विदेशी आक्रमणो के कारण ऐसे ग्रंथ अधिकांश मे नष्ट हो गए हैं। प्रतिमाओ तथा उनसे सम्बन्धित साहित्य के नष्ट हो जाने से जो क्षति हुई है, उसे शायद हम कभी पूरा न कर सकें। जो प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं उनका वर्णन हमे उपलब्ध प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धित पुस्तकों मे अधिकतर नही मिलता। इसी प्रकार प्राप्त पाठ्य ग्रन्थो मे जिन प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है, वे प्रतिमाएं अभी प्राप्त नही हो सकी है। प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धित जो ग्रंथ या पाठ्य पुस्तकें प्राप्त हुई है, उनका वृहत् अध्ययन ही हमारे प्रतिमा सम्बन्धी ज्ञान को विकसित कर सकता है।

अध्याय : तीन

प्रतिमा पूजा का विकास

प्रतिमाओं का निर्माण प्राचीन काल मे ही प्रारम्भ हो गया था। इस तथ्य का पुष्टीकरण प्राचीन ग्रन्थों मे प्राप्त उद्धरणों से होता है। भास के प्रतिमा नाटक मे प्राचीन काल के महान पुरुषों की प्रतिमाओं का वर्णन है किन्तु ये प्रतिमाए पूजा के उद्देश्य से नही बनाई गई। भीम की लोह मूर्ति, जो कि कौरव राजा धृतराष्ट्र ने चकनाचूर कर दी थी, कृष्ण द्वारा अयासी प्रतिमा के रूप मे वर्णित की गई है। इसी प्रकार अश्वमेध यज्ञ के विधान हेतु सीता की अनुपस्थिति मे सीता की स्वर्ण मूर्ति का निर्माण कराए जाने का प्रसग है।

पटना तथा पारखम जिलो से प्राप्त प्रतिमाओ को श्री के० पी० जायसवाल शिशुनाग वश के महान पुरुषो की प्रतिमाएं बताते है। कनिष्क, कडफाइसेस आदि की प्रतिमाए भी प्राप्त हुई हैं जिनमे इन शासकों की अलौकिक शक्ति परिलक्षित होती है। इस तथ्य को कुषाण शासकों द्वारा देवपुत्र ऐसी उपाधिया धारण करने तथा प्रतिमाओं के मुख के चारो ओर चिन्हित आभामडल उजागर करते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य मे ऐसी अनेक प्रतिमाओं का वर्णन आता है।

उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार पूजा का विकास सिन्धु घाटी सभ्यता काल मे हुआ। सिन्धु घाटी के लोग विभिन्न देवी तथा देवताओं की पूजा किया करते थे। *इन देवी तथा देवताओं के नाम के विषय मे अभी प्रामाणिक रूप से कुछ भी* नही कहा जा सकता। सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग इन देवी-देवताओं की आराधना मानव रूप, पशु रूप तथा चिन्हात्मक रूप मे अवश्य करते थे। इस काल मे मातृ शक्ति की पूजा का अधिक प्रचलन था। मातृ देवी की प्राप्त प्रतिमाए इस बात को पुष्ट करती है कि यहा के निवासी मातृ देवी के अनन्य उपासक थे। एक मुद्रा पर देवी अकित है जिनके शीश पर सीग है। वे पीपल के वृक्ष के मध्य प्रदर्शित की गई है। उनके सम्मुख सीगो वाली एक अन्य स्त्री मूर्ति घुटनों के बल बैठी दिखाई गई है जिसके केश गुथे हुए हैं और बाहें चूड़ियों से सुसज्जित हैं। बैठी हुई स्त्री के पीछे एक मनुष्य और एक बकरी का प्रतिबिम्ब

उभरता है जो कि इस दृश्य को कौतूहल से देख रही है। मुद्रा के किनारे पर अन्य मूर्ति दूसरी ओर मुख किए खड़ी है। इसके सींग नहीं हैं। विद्वानों ने इसे शीतल देवी तथा अन्य छह बहनों के रूप में पहचाना है एवं पीपल उनका निवास स्थान बताया है। विद्वानों का कथन है कि मातृ शक्ति की पूजा उस समय केवल भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण एशिया में प्रचलित थी।

सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग एक ऐसे देवता की भी पूजा करते थे जो शिव के अनुरूप था। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुद्राओं पर भी इस अलौकिक शिव रूप का मुद्रण मिला है। यहा से प्राप्त एक मुद्रा पर एक ऐसे देव का भी चित्रण है जिसे विद्वान् शिव पशुपति के रूप मे बताते है। देव के तीन मुख है तथा इसके चारो ओर दो हिरन, एक भेड़ा, एक हाथी, एक सिंह और एक भैंसा दर्शाया गया है। इस देवता के सिर के ऊपर तीन सीगो जैसी आकृति है। शरीर का ऊपरी भाग नग्न है। इसके गले के आभूषण शुंग काल की यक्ष मूर्तियो के आभूषणो से साम्यता रखते हैं। इस देवता की समता इतिहासकारों ने शिव से की है, लेकिन ऐतिहासिक शिव के नन्दी को यहा प्रदर्शित नही किया गया है। विद्वानो का यह भी अनुमान है कि इस देवता के सिर पर जो सींग-से प्रदर्शित किए गए हैं, वे सीग न होकर त्रिशूल का ऊपरी भाग है। परन्तु महाभारत के एक उद्धरण से ज्ञात होता है कि शिव के सीग भी दर्शाये गए है। विद्वान् शास्त्री का कथन है कि यह शिवाकृति न होकर 'पशुपति देव' की आकृति है। प्रतिमा विज्ञान के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस आकृति के मौलिक तत्व शिव पशुपति के मौलिक तत्वो से अधिक साम्यता रखते हैं। यह बात पूर्णरूपेण विदित है कि शिव के या तो एक सिर या तीन सिर का वर्णन किया गया है तथा शिव को सदा पशुओं के मध्य मे दिखाया गया है। श्री आर० पी० चन्दा का कथन है कि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त प्रमाणो ने यह भली-भांति स्पष्ट कर दिया है कि सिन्धु घाटी सभ्यता मे मानव एव महामानव की योग मुद्राएं, जो कि बैठी तथा लेटी हुई अवस्था मे है, प्राप्त होती है जिनकी पूजा की जाती थी। यहा पर यह कह देना आवश्यक हो जाता है कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो मे प्राप्त सीलो के आधार पर देवाकृतियो के मुद्रण के विषय मे तब तक निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता है जब तक कि हम सिन्धु घाटी सभ्यता के काल की भाषा तथा लिपि की गुत्थियां नही सुलझा लेते।

उपलब्ध साहित्य मे सर्व प्राचीन साहित्य वेदों को माना जाता है। उसमें भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। उस समय प्रतिमा निर्माण एवं पूजा का प्रचलन था अथवा नहीं इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् आर्यों के मध्य ऋग्वैदिक काल मे प्रतिमा पूजा का प्रचलन मानते है तथा अपने मतों के पक्ष मे ऋग्वेद की ऋचाओं की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इन विद्वानो मे वोलसन,

हापकिंस, एम० वी० वेंकटेश्वर, एस० सी० दास तथा वृन्दावन भट्टाचार्य उल्लेखनीय हैं। लेकिन दूसरी ओर वे विद्वान हैं जो कि सबल प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध करते हैं कि ऋग्वैदिक काल मे भारतीय आर्यों के मध्य प्रतिमा पूजा का प्रचलन नही था। विद्वान् मैक्समूलर का कथन है कि 'वैदिक धर्म का प्रतिमाओ से कोई सम्बन्ध नही'। एच० एच० विल्सन का कथन है कि वैदिक काल की पूजा एक प्रकार की घरेलू पूजा थी जिसमे प्रार्थना का मुख्य स्थान था। यह प्रार्थना उच्च अट्टालिकाओ वाले मन्दिरो मे न की जाकर साधारण घरो मे की जाती थी। मैकडानल का कथन है कि प्रतिमा पूजा का विकास ऋग्वैदिक काल मे नही हुआ। ऋग्वेद मे प्रतिमा पूजा या मन्दिरो का वर्णन ही प्राप्त नही होता जो कि सिद्ध करता है कि उस समय के निवासी प्रतिमा पूजक नही थे। हा, प्राकृतिक शक्तियो मे उनका विश्वास था। श्री दयानन्द शास्त्री के मतानुसार भी ऋग्वैदिक काल मे प्रतिमा पूजा का विकास नही हुआ था। ऋग्वेद मे किसी भी स्थान पर पूजा शब्द का वर्णन नही है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ऋग्वैदिक काल मे प्रतिमा पूजा के प्रचलन के सकेत नही है। यदि प्रतिमा पूजा इस समय प्रचलित होती तो ऋग्वेद मे कही न कही पूजा अथवा अर्चना शब्द का उल्लेख अवश्य आता।

कुछ विद्वानो के मत उपरोक्त कथन से भिन्न है। ये विद्वान् तर्क करते है कि हम ऋग्वेद मे प्रतिमाओ का उल्लेख पाते है। बोलसन ने स्वय इस मत का समर्थन करते हुए कहा है कि प्रतिमाओं की अर्चना उस समय भारतीय आर्यों की पूजा प्रथा मे एक महत्वशाली अग बन गई थी। ऋग्वेद के एक उद्धरण मे एक रुद्र प्रतिमा का वणन किया गया है जो कि चमकते हुए सुनहरे रग से चित्रित की गई थी। इन्द्र का वर्णन हमे ऋग्वेद के अनेक उद्धरणो मे मिलता है। ऋग्वेद की एक ऋचा मे एक पुजारी कहता है, "मेरा इन्द्र कौन खरीदेगा ?" इस विवरण स यह सकेत मिलता है कि यह अवश्य ही कोई प्रतिमा रही होगी किन्तु उपरोक्त प्रमाण के विपक्ष मे कुछ विद्वानो का यह भी मत है कि पूजा की जाने वाली प्रतिमाए बेची नही जा सकती है। दूसरे उनका यह तर्क भी महत्वपूर्ण है कि ऋग्वैदिक काल मे यज्ञो का विधान बड़ा ही प्राविधिक था। ब्राह्मणो मे हम यज्ञ मे काम आने वाली विभिन्न वस्तुओ तथा उनके प्रयोग किए जाने के ढगो का उल्लेख पाते है किन्तु इनमे कही पर प्रतिमाओ का वर्णन नही है। यदि यज्ञ के समय इन प्रतिमाओ का भी प्रयोग किया जाता तो अवश्य ही इनमे इस का वर्णन होता।

ऋग्वैदिक देवता विभिन्न प्राकृतिक शक्तियो के स्वरूप थे। वे प्रेम के स्वरूप माने जाते थे। यद्यपि रुद्र को क्षयकारी देव माना गया है किन्तु ऋग्वेद रुद्रदेव को हमारे सम्मुख मात्र क्षयकारी देव के रूप मे प्रस्तुत नही करता अपितु यह भी

बताता है कि रुद्र की आराधना से क्या-क्या लाभ हो सकते हैं। इस काल में कौन देवता सर्वोच्च माना जाता था, इसका निश्चय कर पाना भी बडा कठिन है। एक स्थान और विशेष अवसर पर एक देवता सर्वोच्च मान लिया जाता है जबकि दूसरे अवसर पर दूसरे देवता की सर्वोच्चता घोषित की जाती है। फिर भी यह सर्वमान्य तथ्य है कि ऋग्वैदिक काल में वरुण एव इन्द्र का अधिक महत्व था जो कि कालान्तर मे घट गया।

ऋग्वैदिक काल में देवी तथा देवताओं की आराधना प्रेम भाव से की जाती थी। लोग सुखी जीवन मे विश्वास करते थे। यज्ञ देवी तथा देवताओ की आराधना का मुख्य माध्यम था जो देवताओ के आदर-सम्मान मे उन्हें प्रसन्न रखने के लिए किए जाते थे। यज्ञों को करने का माध्यम अग्निकुण्ड था।

ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञो के विधान से परिपूर्ण हैं जो यह बताते हैं कि विभिन्न प्रकार के यज्ञों के करने के क्या विधान हैं तथा उन्हें किस-किस तरह करना चाहिए। इनमे भी कही पर प्रतिमाओ या उनकी पूजा का वर्णन नही आता किन्तु ये सूर्य देवता के संकेतों का, जो कि विशेष यज्ञो के समय प्रयोग मे लाए जाते थे, वर्णन अवश्य करते हैं। उपनिषदो की दार्शनिक ज्योति एवं ब्रह्म तथा आत्म विद्या से हम भली-भांति परिचित हैं। उपनिषदो के महास्रोत से ही भक्ति-धारा का उद्गम हुआ। उपनिषद् देवो की उपासना के मत का प्रतिपादन करते हैं। इन ग्रन्थो में ही हम सर्वप्रथम 'भक्ति' का वर्णन पाते हैं। 'भक्ति' से हमारा आशय व्यक्ति की व्यक्ति के प्रति प्रेम भावना से है। उपासना के स्तर पर हम इस भक्ति भाव को किसी देवता के प्रति विशेष आसक्ति से भी प्रदर्शित कर सकते हैं। प्रतिमा पूजन का स्रोत निश्चित रूप से भक्ति मार्ग के प्रतिपादन के साथ-साथ ही उभरा। भक्ति मार्ग के प्रतिपादन का श्रेय उपनिषदो को ही देना उचित होगा।

अध्याय : चार

सिन्धु घाटी सभ्यता एवं प्रतिमा विज्ञान

सिन्धु घाटी सभ्यता के लोगों की धार्मिक मान्यताओं के अध्ययन के लिए हमें मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा में प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई मुद्राओं तथा मूर्तियों का आश्रय लेना पड़ता है।

प्राप्त प्रमाणों के आधार पर हम पहले ही कह चुके हैं कि यहां मातृशक्ति की आराधना का अधिक प्रचलन था। इनकी उपासना सुमेर व मिस्र की सभ्यता में भी की जाती थी। हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रा पर मातृदेवी का चित्र अंकित है और पास ही एक पुरुष हाथ में छुरी लिए खड़ा है। पास ही एक स्त्री हाथ उठाए हुए अंकित की गई है। संभवतः उस समय स्त्रियों की बलि प्रथा का प्रचलन भी रहा हो। एक अन्य मुद्रा प्राप्त हुई है जिसमें एक देवी, जिसके सींग हैं, पीपल के वृक्ष के नीचे दिखाई गई है। इसके आगे एक स्त्री घुटनों के बल बैठी हुई है। इसके केश चोटियों में गुथे हैं और बाहें चूड़ियों से सुसज्जित हैं। बैठी हुई स्त्री के पीछे एक मनुष्य छाया एक बकरी के साथ इस दृश्य को कौतूहल से देख रही है। भील के नीचे किनारे पर एक स्त्री मूर्ति दूसरी ओर मुंह किए खड़ी है। इसके सींग नहीं हैं। विद्वानों ने इसे शीतला देवी तथा उनकी छह बहनें बताया है। मिट्टी की एक मूर्ति भी प्राप्त हुई है। मूर्ति अर्धनग्नावस्था में है। मूर्ति को पूर्णतः कपड़े से सुसज्जित न करने का अर्थ यह नहीं है कि सिंधु घाटी सभ्यता के लोग नंगे रहते थे या कपड़ा पहनना या बनाना नहीं जानते थे। यह संभव है कि देवी तथा देवताओं को सांसारिक वस्त्र पहनाकर वे उनकी मर्यादा को घटाना नहीं चाहते थे या वे उनके द्वारा अपनी कला का प्रदर्शन करना चाहते थे। इस मूर्ति को बहुत-से गहनों से अलंकृत किया गया है। इसके सिर पर पंखे के आकार की टोपी है। इन विवरणों के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि मातृ शक्ति सिन्धु घाटी सभ्यता के लोगों की प्रमुख आराध्या थी।

सिन्धु सभ्यता में पशुपति शिव की भी पूजा प्रचलित थी जिसके प्रमाण उपलब्ध हैं। शैव धर्म विश्व के प्राचीन धर्मों में एक है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक

सील पर एक देव आकृति अंकित है जिसके तीन मुख व तीन नेत्र हैं। सिर पर सीग-से दिखाई पड़ते है। इस आकृति के दोनों ओर अनेक पशु है। सर जॉन मार्शल तथा कुछ अन्य विद्वानो ने इसे शिव पशुपति के रूप मे पहचाना है। जहा तक सीगों का प्रश्न है, महाभारत में एक स्थान पर शिव के सीग बताए गए हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह त्रिशूल का उपरोक्त भाग है।

हडप्पा मे एक मुहर प्राप्त हुई है जिसमें एक देव को योग तपस्या मे लीन चित्रित किया गया है। यह देव योगासन धारण किए हुए हैं। इनके कुछ उपासक भी दिखाए गए है जिनमे आधे पशु तथा आधे मनुष्य हैं। यह भी उस देव का ही चित्र माना जा सकता है जिसे मार्शल ने 'शिव पशुपति' के रूप मे पहचान है।

एक अन्य मुद्रा पर एक और मूर्ति मिली है जिसके बाएं हाथ मे दण्ड तथ दाएं हाथ मे कमण्डल है। यह देवता एक बैल के पास खडा है। यह भी पशुपति शिव की आकृति है। एक अन्य सील पर एक देवता को दिखाया गया है। यह देवता अपना पैर भैंस की नाक पर रखे है तथा एक हाथ मे उसके सीग पकडे हुए हैं और दूसरे हाथ से उसके पेट मे भाला भोंक रहा है। विद्वानो ने ऊपर वर्णित दो देवताओ के साथ इसे भी शिव माना है तथा इसे दुन्दभि राक्षस का सहार करते हुए बताया है। कुछ सिक्के ऐसे मिले हैं जिन पर दो पशुओ की, मनुष्य एवं पशु की या कई पशुओं की सम्मिलित मूर्तिया अंकित हैं। विद्वानों का विचार है कि ये शिव गणो के चित्र हैं।

उपरोक्त दिए गए विवरणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग एक ऐसे देवता की पूजा करते थे जो कि शिव का समरूप है और जिसे विद्वानो ने शिव पशुपति के नाम से सम्बोधित किया है। इस प्रकार मातृ देवी तथा शिव जिन्हें हम पशुपति शिव के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता के लोगो के दो प्रधान आराध्य थे जिनकी पूजा का प्रचलन आज भी भारतवर्ष में है।

अध्याय : पांच

प्रधान हिन्दू देवता शिव एवं विष्णु

शिव

मातृ देवी की ही तरह शिव प्राचीन काल से ही भारत के आराध्य देव रहे हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता में हमें पशुपति शिव के दर्शन होते हैं। यहाँ पशुओं से घिरे हुए शिव न केवल मानव अपितु समस्त जीवों के पोषक देव हैं। शिव की पहचान रुद्रदेव से की गई है और उन्हें संहार का देवता माना गया है। प्राप्त शिव मूर्तियां हमे उनके संहार एवं अनुग्रह दोनों रूपों से अवगत कराती हैं। संहार मूर्तियों में शिव के रौद्र रूप का प्रदर्शन किया गया है। उनके बहुकर हैं जिनमें विभिन्न आयुध हैं। वह अपने तथा अन्य देवताओं के शत्रुओं का विनाश कर रहे हैं। शिव की अनुग्रह मूर्तियां उनके अनुग्रह रूप का प्रदर्शन करती हैं। ये मूर्तियां प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों में शिव का एक हाथ वरद मुद्रा में हो सकता है, दूसरा हाथ अभय मुद्रा में हो सकता है तथा उनके अन्य हाथ त्रिशूल, कमण्डल तथा घट धारण कर सकते हैं। शिव के साथ अधिकतर पार्वती तथा अन्य परिवार के सदस्य जैसे गणेश या कार्तिकेय दिखाए जाते हैं तथा शिव किसी को वरदान देते हुए प्रदर्शित किए जाते हैं। शिव के दर्शन आज भी हमें लिंग एवं मूर्ति रूप में होते हैं। उनकी प्रतिमाएं अनुग्रह-संहार, सौम्य, वीभत्स रूप में प्राप्त हुई हैं जिनके प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षणों पर हम प्रकाश डालेंगे।

शिवलिंग—प्राचीन काल से लेकर आज तक शिवलिंग की पूजा की जाती है और भारत के अधिकतर मन्दिरों में शिवलिंग ही स्थापित हैं। शिवलिंग में मुख शिवलिंग विशेषतः उल्लेखनीय हैं। बनर्जी महोदय ने एकमुखी एवं पंचमुखी शिवलिंग का उल्लेख किया है। पंचमुखी लिंग में चार मुख लिंग के चारों ओर तथा पांचवां मुख चारों मुख के ऊपर है। राव महोदय के अनुसार दक्षिण भारत से प्राप्त गोडिमल्लम लिंग सर्व प्राचीन है। लिंग के उपरोक्त अर्धभाग में आभूषणों से सुसज्जित कानों में कुण्डल पहने हुए और कन्धे पर त्रिशूल धारण किए हुए शिव का रूप देखते ही बनता है। भीटा से प्राप्त शिवलिंग के उपरोक्त भाग में शिव के बाएं हाथ में त्रिशूल तथा दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। लिंग

के चार कोनों में चार मुख दर्शाये गए हैं। लिंग का उल्लेख राव महोदय ने किया है।

अनुग्रह मूर्तियां

शिव की अनुग्रह मूर्तियां इस प्रकार हैं—

विष्णु अनुग्रह मूर्ति—शिव यहां विष्णु को उपहार देते हुए प्रदर्शित किए गए हैं। विद्वानों का विचार है कि इस मूर्ति के माध्यम से शिव को विष्णु से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

रावण अनुग्रह मूर्ति—शिव रावण को वरदान देते हुए दिखाये गए है। एलोरा के कैलाश मन्दिर में शिव-पार्वती कैलाश पर्वत पर बैठे दिखाये गए है। शिव-पार्वती के नीचे रावण दिखाया गया है।

किरात अनुग्रह मूर्ति—इस मूर्ति में शिव को अर्जुन को वरदान देते हुए प्रदर्शित किया गया है। शिव पाशुपत अस्त्र अपने हाथ में लिए हुए हैं जिसे वह वरदानस्वरूप अर्जुन को दे रहे हैं। तिरुछन्नगत्तंगुडे में पत्थर की अर्जुनाग्रह मूर्ति में शिव अर्जुन के समक्ष किरात रूप में खड़े प्रदर्शित किए गए हैं।

चण्डेश अनुग्रह मूर्ति – इस मूर्ति की कथा का सम्बन्ध आगमों से है। शिव तथा पार्वती दोनों उपस्थित हैं। भक्त बालक शिव को प्रणाम कर रहा है और शिव उसे वरदान दे रहे हैं। बालक का पिता भी उपस्थित है।

विघ्नेश अनुग्रह मूर्ति—शिव गणेश को वरदान देते हुए प्रदर्शित किए गए हैं।

नन्दीश अनुग्रह मूर्ति—शिव अपने वाहन नन्दीश को वरदान दे रहे हैं।

संहार मूर्तियां

इन मूर्तियों में शिव को शत्रुओं का विनाश करते दिखाया गया है। ये मूर्तियां निम्नलिखित हैं :—

शरभ मूर्ति—शिव नरसिंह देव का नाश करते दिखाये गए हैं। मूर्ति में शिव का एक भाग मनुष्य, एक भाग पशु तथा एक भाग पक्षी का है। यह मूर्ति शैव तथा वैष्णव धर्म में वैमनस्य होने का प्रदर्शन करती है।

ब्रह्म सरस छेदन मूर्ति—इस मूर्ति में शिव को ब्रह्मा का एक सिर काटते दिखाया गया है। पहले ब्रह्मा के पांच सिर थे जिसमें एक सिर शिव ने काट लिया था। यह मूर्ति एक मनोरंजक कथा को जन्म देती है। इस कथा के अनुसार ब्रह्मा का कटा हुआ सिर शिव के हाथों में चिपक गया जिसको देखकर शिव सशंकित हुए। उन्होंने ब्रह्मा से ही सम्मति ली कि उन्हें क्या करना चाहिए? ब्रह्मा ने उन्हें बताया कि वह कपाली भेष में बारह वर्ष घूमकर व्यतीत करें।

तदनुसार शिव ने ऐसा ही किया तथा भिक्षु भेष में स्थान-स्थान पर घूमते रहे। वे अन्त मे बनारस पहुंचे जहां वह सिर कपाल मोचन मे गिर गया और शिव अपने पाप से मुक्त हो गए।

यमार मूर्ति—आगमो तथा पुराणो मे इस कथा का उल्लेख मिलता है। कथा इस प्रकार है, मारकण्डेय के पिता के कोई पुत्र नही था। उन्होंने देवों की आराधना की। देवताओ ने उन्हें एक पुत्र होने का वर दिया, किन्तु पुत्र की अल्पायु के विषय मे उन्हें बता दिया। यह बालक मारकण्डेय के नाम से जाना जाता है। मारकण्डेय की आयु केवल तेरह वर्ष ही थी। उसने शिव की घोर तपस्या की। मृत्यु के निश्चित क्षणों मे वह शिव साधना मे लीन था। यमदूत उसे लेने आए किन्तु उसके भक्ति बल के कारण अकेले लौट गए। तब यमराज स्वयं आए। उन्होंने मारकण्डेय की आत्मा को हरण करने के लिए पाश फेंका, किन्तु इस पाश मे शिव मूर्ति को भी लपेट लिया। इस पर भगवान शिव क्रोधित होकर विकराल रूप मे प्रगट हुए। यम शिव का विकराल रूप देखकर भयभीत हो गए। उन्होने शिव की स्तुति कर उनसे क्षमा-याचना की तथा वापस चले गए। इस प्रकार मारकण्डेय की प्राण रक्षा हो गई। अधिकतर यह माना जाता है कि शिव उस शिवलिंग से प्रकट हुए जिसकी मारकण्डेय पूजा कर रहा था। एक स्थान पर शिव की मानवाकृति शिवलिंग के ऊपर से प्रदर्शित की गई है तथा शिव का एक पैर लिंग के अन्दर ही दिखाया गया है। उनके चार हाथ हैं। यम शिव के सम्मुख खड़े हुए शिव की प्रार्थना कर रहे है। एक स्थान पर यम को भूमि पर गिरा हुआ शिव की प्रार्थना करते हुए भी दिखाया गया है।

कामन्तक मूर्ति—शिव काम का नाश करते हुए दिखाये गए हैं। कथा इस प्रकार है : दक्षसुता पार्वती की मृत्यु के पश्चात् शिव अपनी तपस्या मे लीन हो गए। उसी समय असुर ताण्डक ने देवो को त्रासित करना प्रारम्भ किया। उसका विनाश केवल शिव के पुत्र द्वारा ही हो सकता था। पार्वती ने पुन: जन्म लिया तथा शिव की आराधना आरम्भ कर दी। ऐसे अवसर पर देवताओ ने कामदेव को शिव की तपस्या भग करने के लिए भेजा। शिव तपस्या मे लीन हैं, उनके हाथ में शस्त्र नही हैं। कामदेव शिव के सम्मुख खड़े हुए हैं। वह धनुष बाण धारण किए हुए हैं। उन्होने शिव की तपस्या भग करने का भरसक प्रयास किया तथा इस प्रयास में सफल भी हुए किन्तु शिव ने क्रोधित होकर अपना तीसरा नेत्र खोलकर उन्हें भस्म कर दिया।

गजासुर संहार मूर्ति—इसमे शिव को गजासुर का विनाश करते दिखाया गया है। उत्तर भारतीय विवरण बताते हैं कि यह घटना उत्तर भारत मे हुई जबकि दक्षिण भारतीय विवरण के अनुसार यह घटना दक्षिण भारत मे हुई। उत्तर भारतीय विवरण के अनुसार शिव के उपासक शिवलिंग की पूजा कर रहे

थे। गजासुर आया तथा उसने शिव उपासकों को भयभीत कर दिया। शिवलिंग से प्रगट हो गए। शिव पूर्णतयः अस्त्र धारण किए हुए हैं। उनके मुख्य शस्त्र त्रिशूल, परशु तथा भाला हैं। शिव के दो हाथ गजासुर को मारने मे लगे हुए हैं। शिव का एक पैर उसके मस्तक पर है। वह गज की खाल पहने हुए हैं। यह उनके भयानक रूप का प्रदर्शन है। इस प्रतिमा के साथ अन्य देवी या देवतागण भी दिखाए जा सकते हैं। अधिकतर पार्वती यहा नही हैं। यदि पार्वती को दिखाया भी गया है तो अत्यन्त भयभीत दिखाया गया है। वह शिव से दूर खडी हुई हैं।

अन्धकवध मूर्ति—अन्धकवध मूर्ति मे शिव अन्धकासुर का विनाश करते दिखाये गए हैं। शिव ने अन्धकासुर का वध करने के लिए त्रिशूल का प्रयोग किया है। अन्धक को मानव रूप मे ही प्रदर्शित किया गया है। शिव के बहुकर हैं जो अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हैं। प्रायः पार्वती शिव के साथ दिखाई गई हैं।

त्रिपुरान्तक मूर्ति—शिव धनुष बाण धारण कर त्रिपुर का विनाश कर रहे हैं। पौराणिक कथा अनुसार तीन राक्षस थे जो कि तीन किलों में निवास करते थे। उन्हें यह वरदान प्राप्त था कि वे केवल उसी व्यक्ति द्वारा मारे जाएंगे जो एक ही तीर से इन तीनो किलों का विध्वंस कर सकेगा। देवतागण सफलता न प्राप्त कर सके। अन्त मे उन्होने शिव की तपस्या की। शिव इस कार्य हेतु गए। अन्य देवता भी उनकी सहायता के लिए उनके साथ गए। शिव ने केवल एक ही बाण से इन किलों का विध्वंस कर दिया।

दशावतार गुफा मे दशमुखी शिव रथ पर सवार युद्ध के लिए तत्पर हैं। काञ्जीवरम के कैलाश मन्दिर मे अष्टभुजी शिव प्रतिमा बडी भव्य है। यहा शिव अलीढ़ासन मुद्रा मे रथ पर सवार हैं। सारथी रथ चलाते प्रदर्शित हैं। राय महोदय ने इन प्रतिमाओं का उल्लेख किया है।

बनर्जी महोदय ने तंजौर के बृहदीश्वर मन्दिर की त्रिपुरान्तक मूर्ति का उल्लेख किया है। यह मूर्ति कास्य से निर्मित है। शिव यहां धनुष बाण लिए दिखाये गए हैं। तंजौर से ही एक अन्य प्रतिमा में शिव पार्वती के साथ प्रदर्शित किए गए हैं। उनके पीछे के दो हाथों मे त्रिशूल तथा मृग हैं। आगे के दो हाथो की अंगुलियां खंडित हैं। मूर्तियों को देखकर पौराणिक कथा का चित्र उभरकर सामने आ जाता है। शिव के हाथ मे धनुष बाण तथा उनका रथ पर आरूढ़ होना इस मूर्ति की विशेषता है।

जालन्धरवध मूर्ति—जालन्धर शक्तिशाली होकर देवताओ को त्रसित करने लगा। देवताओं ने विष्णु की प्रार्थना की। विष्णु ने यह भार अपने कंधों पर ले लिया कि वे असुर राजा का नाश कर देंगे। लेकिन वे इस कार्य मे सफल न हो सके। अन्त में देवताओ ने शिव की प्रार्थना की और यह भार शिव ने सहर्ष

स्वीकार कर लिया। नारद ऋषि जालन्धर राक्षस के पास गए तथा उससे यह कहा कि तुम्हारी मान-मर्यादा तब तक कुछ भी नहीं है जब तक कि तुम पार्वती को न प्राप्त कर लो। राक्षस यह सुनकर पार्वती के वरण को गया। शिव ने क्रोधित होकर चक्र धारण किया और राक्षस का संहार कर दिया।

शिव की दक्षिण मूर्तियां

दक्षिण मूर्तियां चार प्रकार की हैं :—योग मूर्ति, ज्ञान मूर्ति, वीणाधर मूर्ति एवं नृत्य मूर्ति।

योग मूर्ति—इसमें शिव को योगी के रूप में दिखाया गया है। शिव की ये प्रतिमाएं बुद्ध की प्रतिमा से बहुत मिलती-जुलती हैं। शिव की योग मुद्रा में बैठी हुई प्रतिमा तथा बुद्ध की बैठी हुई मूर्तियों में इतनी साम्यता है कि उनको पहचानना कठिन हो जाता है।

ज्ञान मूर्ति—इन मूर्तियों में शिव एक ज्ञानी के रूप में प्रदर्शित किए गए हैं। इसमें ज्ञानी की प्रतिमा ज्ञान-सौन्दर्य तथा ज्ञान-आभा का सुन्दर प्रदर्शन है।

वीणाधर मूर्ति—शिव संगीतज्ञ के रूप में दिखाए गए हैं। शिव के प्रायः चार हाथ हैं जिनमें से दो हाथों में वे वीणा लिए हुए हैं। अपने अन्य दो हाथों में से एक में वे साधारणतया हिरण लिए हुए हैं तथा चौथे हाथ में अन्य वस्तुएं धारण किए हुए होते हैं। प्रतिमाएं बैठी-खड़ी दोनों अवस्थाओं में हैं।

व्याख्यान मूर्ति—शिव को व्याख्यान देते हुए प्रदर्शित किया गया है। उनका बायां हाथ तर्क मुद्रा में रहता है तथा दाहिने हाथ में अक्षमाला रहती है। ऋषि मुनि उनके व्याख्यान को सुनते हुए प्रदर्शित किए जाते हैं। विष्णु काची से प्राप्त शिव प्रतिमा में शिव वट-वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। उनका बायां पैर उनकी दाहिनी जंघा पर, उनके पीछे के हाथ में अक्षमाला तथा बायां हाथ तर्क मुद्रा में है। राव महोदय ने इस प्रतिमा का उल्लेख किया है। तेरोवरियूर से प्राप्त प्रतिमा में शिव पद्मासन पर विराजमान हैं और उनको ऋषि-मुनि घेरे में लिए हुए हैं। उनके दाहिने हाथ में अक्षमाला तथा बायां हाथ तर्क मुद्रा में है।

शिव की नृत्य मूर्तियां

शिव की नृत्य मूर्तियां आज भारत में ही नहीं पश्चिमी देशों में सजावट का केन्द्र बिन्दु बनकर रह गई हैं। नटराज शिव कला का वह परम उत्कृष्ट आभूषण है जो घर-घर में सुसज्जित हो रहा है। विष्णु पुराण शिव को नटराज, नटराजेन या राजितम कहकर सम्बोधित करता है। ये मूर्तियां दो प्रकार की हैं—ललित नृत्य मूर्तियां एवं ताण्डव नृत्य मूर्तियां। ललित नृत्य मूर्तियां ताण्डव नृत्य मूर्तियों की तरह उत्कृष्ट नहीं हैं। ताण्डव नृत्य क्षय का चिह्न है। शिव की ताण्डव नृत्य

की चतुर्भुजी मूर्तियो में, जो तुलनात्मक रूप से अधिक सख्या में प्राप्त हुई है, शिव के एक हाथ मे डमरू है तथा शरीर पर सर्प लिपटे हुए हैं। ये मूर्तियां दक्षिण भारतीय मन्दिरो मे अधिक देखने को प्राप्त होती है। खजुराहो एवं आजमगढ़ के किले के मन्दिरो मे भी शिव की नृत्य मूर्तिया मिली है।

नटराज की दसभुजी एवं बारहभुजी मूर्तिया विशेषत. उल्लेखनीय हैं। बारहभुजी मूर्तियो मे शिव के दो हाथ वीणा वादन मे संलग्न प्रदर्शित किए गए हैं। उनके दो हाथो में शेषनाग है। शिव की दो भुजाएं सिर के ऊपर उठी हुई दिखाई गई हैं। अपने अन्य छह हाथों मे वे खड़ग, त्रिशूल, अक्षमाला, खेटक डमरू इत्यादि धारण किए हुए हैं। दस भुजा वाली नृत्य मूर्ति मे शिव के दो हाथ नृत्य गति से समन्वय करते दिखाए गए हैं। यह समन्वय छह भुजा वाली मूर्तियों मे भी देखने को मिलता है। थापर महोदय ने नटराज की छह भुजा वाली मूर्ति का उल्लेख किया है जिसमें शिव के चार हाथों में त्रिशूल, डमरू, खड़ग तथा मातुलुंग हैं तथा दो हाथ नृत्य गति से समन्वय स्थापित कर रहे हैं। उन्होने एक चार भुजा वाली नटराज मूर्ति का भी उल्लेख किया है जिसमे शिव को अपना बायां पैर उठाये तथा दो हाथो मे डमरू तथा मातुलुग लिए नृत्य करता दिखाया गया है। शिव के अन्य दो हाथ गजहस्त मुद्रा तथा अभय मुद्रा मे दर्शाये गए हैं। बनर्जी महोदय ने भी नटराज शिव की चतुर्भुजी मूर्ति का उल्लेख किया है। शिव चार हाथो मे डमरू, त्रिशूल, सर्प इत्यादि धारण करते है।

सौम्य रूप की शिव मूर्तियां

शिव के सौम्य रूप को मूर्तिया भव्य एव सुन्दर हैं। इनमे उल्लेखनीय है—

नीलकंठ—देवताओ के कल्याण के लिए विष को ग्रहण करने वाले शिव के अनुग्रह स्वरूप को नीलकठ में दर्शाया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार नीलकंठ को स्वर्ण कान्तिमय वर्ण, त्रिनेत्र और नीलकंठ मे प्रदर्शित किया गया है। ढाका म्यूजियम मे नीलकठ की बंगाल से प्राप्त एक सिर वाली प्रतिमा संग्रहित है जिसके दोनों ओर गंगा एव गौरी स्थित हैं। शिव का वाहन नन्दी भी दिखाया गया है। डॉक्टर इन्दुमति मिश्रा ने इस मूर्ति का उल्लेख अपने ग्रन्थ प्रतिमा विज्ञान मे किया है।

महादेव—महादेव के नाम से आज भी शिव जितने प्रसिद्ध हैं शायद अन्य किसी नाम या विशेषण से नहीं। उनका यह विशेषण ही उन्हे सब देवताओ मे श्रेष्ठ होने की ओर इंगित करता है। विष्णु धर्मोत्तर में ऐसे महादेव का उल्लेख है जो बैल पर सवार हैं तथा जिनके पांच मुख हैं। चार मुखों से सौम्यता तथा पांचवें मुख से रौद्र रूप प्रतिबिम्बित होता है। महादेव के पांचवें मुख पर जटाजूट तथा उस पर चन्द्ररेखा उनके रूप को और भी उत्कृष्ट बना देती है।

उत्तर मुख को छोड़कर महादेव के सभी मुखो मे त्रिनेत्र दर्शाये गए हैं। बनर्जी महोदय ने पचमुखी महादेव की प्रतिमाओं का उल्लेख किया है।

महेश्वर—महेश्वर का वर्ण श्वेत है। वे अपनी दस भुजाओ मे मातुलुग, धनुष, दर्पण, कमण्डल, अक्षमाला, त्रिशूल, दण्ड, नीलकमल तथा सर्प लिए हुए है। राव महोदय ने कावेरी पक्कम के निकट महुवेरी के शिव मन्दिर की महेश्वर प्रतिमा का उल्लेख किया है जो श्वेत पत्थर मे शिल्पित है। वह अपनी दस भुजाओ मे दड, कमल, दर्पण, त्रिशूल, धनुष, अक्षमाला आदि धारण किए हुए हैं।

वृषभ वाहन—श्रीमद्‌भागवत शिव के इस स्वरूप की छवि को त्रिनेत्री, जटाजूटधारी, वृषभारूढ, दसभुजी देव के रूप मे प्रस्तुत करता है। शिव को अपने हाथो मे शूल, खटवाग, रुद्राक्ष माला, खप्पर, धनुष, तलवार तथा डमरू इत्यादि आयुध धारण किए हुए होना चाहिए। उनके शरीर पर बाघम्बर है। राव महोदय ने एहोल से प्राप्त शिव की वृषभारूढ मूर्ति का उल्लेख किया है। भगवान शिव सुखासन मुद्रा में शिव पर सवार हैं। बनर्जी महोदय ने वृषभ वाहन की तीन सिर तथा चार भुजा वाली मूर्ति का उल्लेख किया है। उन्होने एक अन्य भव्य प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसमे शिव पार्वती के साथ वृषभारूढ हैं। शिव अपने हाथो मे नीलकमल धारण करते है।

उमा महेश्वर—शिव शान्ति मुद्रा मे उमा के साथ विराजमान हैं। अपने दो हाथो मे से वह एक हाथ मे कमल धारण किए हुए हैं। उनका दूसरा हाथ किसी भी मुद्रा मे हो सकता है। विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार शिव के जटाजूट से सुशोभित आठ सिर तथा दो भुजाए हैं। उनका बायां हाथ पार्वती देवी के स्कन्ध पर तथा दाहिने हाथ मे उत्पल है। पार्वती के बाए हाथ मे दर्पण तथा दाहिना हाथ शिव के स्कन्ध पर रखा हुआ है। रामपुर के अवशेषो से उमा महेश्वर की सुन्दर मूर्ति प्राप्त हुई है। पार्वती शिव की बाई जघा पर विराजमान हैं। शिव का बायां हाथ पार्वती के ऊपर रखा हुआ है। अपने दाहिने हाथ मे शिव उत्पल धारण किए हुए है। डॉक्टर इन्दुमति मिश्रा ने इस प्रतिमा का उल्लेख किया है। डॉक्टर मिश्रा ने खजुराहो से प्राप्त एक अन्य उमा महेश्वर प्रतिमा का भी उल्लेख अपने ग्रन्थ मे किया है। यहां शिव और पार्वती ललितासन मुद्रा मे विराजमान हैं। शिव का बाया पैर मुडा हुआ है। दाहिना पैर पादपीठ पर स्थित है। पार्वती शिव के बाए पैर पर बैठी हुई हैं। शिव अपनी एक भुजा पार्वती के स्कन्ध पर रखे हुए है। उनकी दूसरी भुजा मे त्रिशूल है। पार्वती का दाहिना हाथ शिव के गले मे पड़ा है। शिव पार्वती की आलिंगनबद्ध मूर्तिया कई स्थानों पर प्राप्त हुई हैं। इनमें मथुरा की उमा महेश्वर मूर्ति उल्लेखनीय है।

कल्याण सुन्दर—कल्याण सुन्दर मूर्ति मे शिव पार्वती के विवाह के दृश्य का चित्रण किया गया है। एलीफेन्टा की गुफा मे पार्वती के पिता कन्यादान

देते हुए दिखाए गए हैं। पार्वती शिव के दाहिनी ओर बैठी है। ढाका संग्रहालय में एक मनोरम कल्याण मूर्ति संग्रहित है जो काले पत्थर में निर्मित है। जटाजूट से सुशोभित शिव दाहिने हाथ में त्रिशूल लिए खड़े हैं। पार्वती वधू रूप में अपने बाए हाथ में दर्पण लिए शिव के सन्निकट हैं। शिव पार्वती दोनो के वाहन वृष एवं सिंह उनके पास ही स्थित हैं। इस प्रतिमा का उल्लेख डॉक्टर मिश्रा ने अपनी पुस्तक में किया है। डॉ० आर० थापर महोदय ने अपनी पुस्तक 'आइकन्स इन ब्राज' में सजोर से प्राप्त कल्याण सुन्दर की कास्य प्रतिमा का उल्लेख किया है। जटाजूट एवं कुण्डलो से सुशोभित चतुर्भुजी शिव पार्वती के साथ पद्मासन पर खड़े हैं। उनका अग्र बायां हाथ वरद मुद्रा मे तथा दाहिना हाथ नीचे लटक रहा है। उनके पीछे के हाथो मे मृग तथा त्रिशूल है। अलौकिक वेशभूषा से सुसज्जित पार्वती शिव के अग्र दाहिने हाथ को पकड़े हुए हैं।

चन्द्रशेखर मूर्ति—चन्द्रशेखर मूर्तियो मे शिव के जटामुकुट में चन्द्र को दिखाया गया है। इस प्रकार की कृतियां तीन प्रकार की हैं—

केवल मूर्ति—शिव अकेले हैं। उनके चार हाथों मे से दो हाथों मे परशु तथा मृग तथा अन्य दो हाथ वरद और अभय मुद्रा में हैं। यह शिव के सौम्य स्वरूप एवं शान्ति भाव का अनोखा प्रदर्शन है।

उमा सहित मूर्ति—शिव एवं पार्वती शान्ति मुद्रा मे खड़े हैं। शिव अपने दो हाथों मे से एक में कमल लिए हुए हैं। उनका दूसरा हाथ किसी भी मुद्रा में हो सकता है।

आलिंगन मूर्ति—शिव का एक हाथ पार्वती को आलिंगन किए हुए है। शान्ति शिव एवं पार्वती के मुख पर झलकती है।

सुखासन मूर्ति—शिव अकेले उच्च आसन पर बैठे हुए हैं। उनके दोनों हाथों में परशु तथा मृग हो सकता है। अन्य दो हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में होते हैं।

उमा सहित सुखासन मूर्ति—उमा सहित सुखासन मूर्ति मे पार्वती शिव दोनो बैठे हुए प्रदर्शित किए गए हैं। शिव के अन्य प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षण सुखासन मूर्ति की ही तरह हैं।

स्कन्द मूर्ति—शिव तथा पार्वती के मध्य उनका पुत्र स्कन्द प्रदर्शित किया गया है। कहीं-कहीं स्कन्द नग्न दिखाए गए हैं।

अर्धनारीश्वर मूर्ति—शिव की मूर्तियो मे अर्धनारीश्वर मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह प्रतिमा सृष्टि की रचना की ओर इंगित करती है। साथ ही साथ शैव एवं शाक्त सम्प्रदायों के अन्योन्य सम्बन्ध का भी प्रदर्शन करती है। जब ब्रह्मा के मन में सृष्टि रचना का विचार आया उन्होंने मनुष्य को

रचना की किन्तु फिर भी सृष्टि-रचना अधूरी रही। तब ब्रह्मा ने शिव की वन्दना की और उनसे इस महान कार्य को सम्पन्न करने मे सहायता मांगी। शिव ब्रह्मा के सम्मुख पुरुष एव नारी दोनो के समन्वित रूप, अर्धनारीश्वर मे प्रकट हुए। ब्रह्मा को अपनी त्रुटि का आभास हो गया और उन्होंने स्त्री तथा पुरुष दोनो की रचना की।

पौराणिक वर्णन इस प्रकार है : भृंगी नाम का एक साधक शिव का अनन्य उपासक था। वह केवल शिव की ही पूजा करता था। एक दिन शिव के उपासक आए और उन्होने शिव तथा पार्वती दोनो की उपस्थिति मे शिव के चारो ओर प्रदक्षिणा की। भृंगी केवल शिव मे ही विश्वास रखता था। अतः उसने केवल शिव के चारो ओर ही प्रदक्षिणा की। इस पर पार्वती ने तपस्या कर शिव से यह वरदान मांगा कि उन्हें शिव की अर्धांगिनी माना जाए।

यह मूर्ति हरिहर मूर्ति की भांति है। इसमे दाहिनी ओर शिव अपने उपासको के साथ तथा बाईं ओर पार्वती अपने उपासको के साथ प्रदर्शित की गई हैं। विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार अर्धनारीश्वर प्रतिमा मे शिव के अर्ध शरीर को जटाजूट, चन्द्रवेदो, शरीर पर भस्मलेप, सर्प यज्ञोपवीत, सर्प मेखला, त्रिशूल, अक्षमाला से प्रदर्शित किया जाना चाहिए तथा अर्धभाग सुन्दर केशकला, तिलक, स्तन, हार, कयूर, कंकण, कुण्डल, मेखला इत्यादि आभूषणो से युक्त तथा हाथ मे दर्पण आदि लिए हुए दिखाया जाना चाहिए। एकमुखी प्रतिमा मे आधा मुख शिव का तथा आधा शक्ति का दर्शाया जाता है।

अर्धनारीश्वर मूर्तियां बादामी, महाबलीपुरम, कांजीवरम, कुम्भकोणम, मथुरा इत्यादि स्थानो से प्राप्त हुई है जिनका उल्लेख राव महोदय ने किया है। मद्रास म्यूजियम मे संग्रहित अर्धनारीश्वर प्रतिमा तो सचमुच देखते ही बनती है। प्रतिमा मे स्त्री पुरुष का समावेश पूर्णतः स्पष्ट है। तंजौर मे वृहदीश्वर मन्दिर से प्राप्त अर्धनारीश्वर प्रतिमा बहुत सुन्दर है। खजुराहो से प्राप्त प्रतिमाओ मे शिव ललितासन मुद्रा मे दृष्टिगोचर होते हैं। प्रतिमा का दाहिना भाग जटाजूट, यज्ञोपवीत, कुण्डल एव त्रिशूल से सुशोभित होता है। बनर्जी महोदय ने भी कई अर्धनारीश्वर प्रतिमाओ का उल्लेख किया है।

हरिहर मूर्ति—हरिहर मूर्ति शैव एव वैष्णव सम्प्रदाय मे सद्‌भावना एव सामंजस्यता की द्योतक है। विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार मूर्ति का दाहिना अर्धभाग श्वेत वर्ण के शिव तथा बाया अर्धभाग नीलवर्ण के विष्णु से शिल्पित किया जाना चाहिए। त्रिशूल, डमरू, कमल तथा चक्र प्रतिमा के हाथो मे यथास्थान दिखाए जाने चाहिए। शिव एव विष्णु के वाहन नन्दी एव गरुड़ क्रमशः बाए तथा दाहिने ओर प्रदर्शित किए जाने चाहिए। सुप्रभेदागम के अनुसार हर्यर्ध मूर्ति मे विष्णु के शरीर पर पीताम्बर तथा सिर पर मुकुट तथा जटाजूट से युक्त शिव

को व्याघ्र छाल पहने हुए होना चाहिए। शिल्परत्न दोनों देवो के साथ उनकी देवियों का दर्शाया जाना आवश्यक बताता है।

बादामी से प्राप्त हरिहर मूर्ति मे बाएं भाग मे किरीट मुकुट से सुशोभित हरि तथा दाएं भाग मे जटाजूटयुक्त शिव क्रमशः लक्ष्मी तथा पार्वती सहित दर्शाए गए हैं। नन्दी एवं गरुड का भी चित्रण किया गया है। हरिहर मन्दिर की कांस्य में निर्मित हरिहर मूर्ति अपने मे अनोखी है। प्रतिमा का बायां भाग विष्णु का तथा दाहिना भाग शिव का प्रदर्शन करता है। दोनों देवो के वस्त्र, आभूषण, आयुध, वाहन इत्यादि लक्षण उनके स्वरूप को उत्कृष्ट रूप से परिलक्षित करते हैं। खजुराहो की हरिहर प्रतिमा चतुर्भुजी है किन्तु प्रतिमा की आगे की दोनो भुजाएं खण्डित हैं। पीछे की दोनों भुजाओं मे चक्र तथा त्रिशूल हैं। बाएं भाग पर किरीट मुकुट, पीताम्बर तथा आभूषण विष्णु का तथा दाहिने भाग पर जटा-जूट, कुण्डल, ककण तथा सर्प आभूषण शिव का भास कराते हैं।

गंगाधर मूर्ति—नृप भागीरथ ने गगा को स्वर्ग से धरा पर लाने के लिए घोर तपस्या की। उन्हें वर प्राप्त हुआ कि वे गंगा को धरा पर लाने मे सफल होंगे। प्रश्न यह था कि गगा के प्रबल वेग को धारण कौन करेगा। अत. भागीरथ ने आराधना की। शिव ने प्रसन्न हो भगीरथ को गगा धारण करने का आश्वासन दे दिया। मूर्ति मे शिव पार्वती के साथ दिखाए गए हैं। गगा स्वर्ग से हिमालय पर अवतरित हो रही है। वे शिव की जटाओ में समा गई हैं। भागीरथ तथा देवतागण स्तुति करते दर्शाए गए हैं।

भिक्षाटन मूर्ति—जब शिव ने ब्रह्मा का पाचवा सिर काट लिया तो वह उनके हाथ मे चिपक गया। शिव को ब्रह्म हत्या का पाप लग गया। शिव ने इस पाप से छुटकारा पाने के लिए ब्रह्मा से विधान पूछा। इसका केवल एक ही उपाय था कि शिव भिक्षु रूप मे कटा हुआ सिर लेकर भिक्षा मागे। शिव ने ऐसा ही किया और पाप से छुटकारा पा लिया। मूर्ति में शिव भिक्षुक रूप मे प्रदर्शित किए गए हैं। उनके हाथ में सिर है। कुछ विद्वानो ने इस बात पर अधिक जोर दिया है कि शिव द्वारा ब्रह्मा का सिर काटे जाने का विषय केवल साम्प्रदायिक भाव एव शिव की ब्रह्मा पर श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयास मात्र है। शिव ने ब्रह्मा का सिर काटकर श्रेष्ठता प्राप्त कर ली है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त शिव के सौम्य सुन्दर स्वरूप की कुछ अन्य मूर्तियां भी देखने को मिलती है। मूर्ति में पार्वती और शिव बैठे हुए प्रदर्शित किए जा सकते हैं। शिव का वाहन नन्दी, पुत्र कार्तिकेय, अन्य पारिवारिक सदस्य, ऋषि भृंगि तथा अन्य उपासकगण दर्शाये जा सकते हैं। शिव के हाथ में परशु तथा कहीं-कहीं कमल है। उनकी वेशभूषा साधारण है। एलोरा मे शिव पार्वती खेलते हुए दिखाए गए हैं। एक अन्य दृश्य मे शिव पार्वती दोनो आसीन हैं।

शिव के हाथ मे पुस्तक है जिसे वह पढ रहे हैं।

शिव की वीभत्स स्वरूप की मूर्तियां

शिव के भयानक रूपो मे श्मशानवासी, महाकाल, कामातक एवं त्रिपुरान्तक स्वरूप उल्लेखनीय हैं।

श्मशानवासी—शिव का चित्रण भूतनाथ के रूप मे हुआ है। जटाजूट से युक्त शिव वृष पर सवार हैं। उनकी कचन काया पर भस्म लगी हुई है। त्रिनेत्रधारी भूतनाथ के साथ उनके गण हैं।

महाकाल—श्रीमद्भागवत के अनुसार शिव का चिताभस्म धारण किए नग्न शरीर, गले मे नरमुण्ड माला, हड्डियो के आभूषण और बिखरे हुए केश उनके रौद्र स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं।

कामान्तक—कामान्तक मूर्ति मे कामदेव को भस्म करने वाले शिव का चित्रण किया गया है। बनर्जी महोदय ने गगैकोण्डचोलपुरम मन्दिर की कामातक मूर्ति से हमे अवगत कराया है। योगासन मुद्रा मे विराजमान शिव के बाईं ओर कामदेव और रति दिखाये गए हैं। शिव का त्रिनेत्र कुछ खुला हुआ है। शिव के सेवक उनकी विनती कर रहे हैं।

शिव का सिक्कों पर संकेतात्मक तथा पशु रूप में प्रदर्शन

मानव ने पहले-पहल देवताओ का प्रदर्शन सकेतो द्वारा करने का प्रयास किया चाहे वह ब्राह्मण देवता शिव हो या विष्णु हो या जैनियो के तीर्थंकर। शिव का प्रदर्शन उनके त्रिशूल, लिंग, परशु के द्वारा और तीर्थंकरो का विभिन्न प्रतीको द्वारा किया गया है। इन सकेतो का प्रदर्शन केवल स्थापत्य कला मे ही न होकर सिक्कों पर भी, जो कि भारतीय व विदेशी शासको द्वारा समय-समय पर प्रचलित किए गए, हुआ है। सिक्को पर प्राप्त संकेतो को हम इस प्रकार विभक्त कर सकते हैं—

क. लिंग सकेत,

ख त्रिशूल सकेत,

ग. त्रिशूल तथा परशु सकेत।

लिंग संकेत—एक उत्कीर्ण सिक्के पर, जिसके पाए जाने का स्थान अज्ञात है, लिंग प्रदर्शित किया गया है। एलन भी इस सकेत को समकोण आधार पर लिंगम ही पहचानते हैं। दो ताम्र सिक्को के पृष्ठ भाग पर, जो कि सम्भवतः तक्षशिला के हैं, लिंग सकेत प्राप्त होते हैं। उज्जैनी से भी प्रचुर सख्या मे प्राप्त सिक्को पर पाषाण वेष्टनी के अन्दर दो वृक्षो के मध्य एक आधार पर हमे शिवलिंग का अकन देखने को मिलता है। ये सिक्के साधारणतः दूसरी या तीसरी

शताब्दी ई० पू० के माने जाते हैं।

त्रिशूल संकेत—पांचाल राजा रुद्रगुप्त के सिक्को पर त्रिशूल अंकित है। राजा का नाम 'रुद्र' स्वयं यह बात प्रमाणित करता है कि वह शिव का भक्त रहा होगा। एलन का भी यही कथन है कि सिक्के पर प्रदर्शित संकेत त्रिशूल ही है। एक अन्य सिक्के पर भी, जो कि सम्भवतः तक्षशिला का है, त्रिशूल संकेत प्राप्त होता है। एलन का विचार है कि इस सिक्के के मध्य वृक्षाकृति है किन्तु डॉक्टर बनर्जी का कथन है कि यह वृक्षाकृति न होकर त्रिशूल है।

त्रिशूल परशु संकेत—कडफाइसेस द्वितीय के सिक्को के सीधे भाग पर यह संकेत प्राप्त होता है। कडफाइसेस द्वितीय स्वयं को 'महेश्वर' कहकर पुकारता था। कुषाण वंश के शासक वासुदेव के सिक्को पर भी यही संकेत अंकित है। धाराघोष के सिक्को के उल्टे भाग पर भी त्रिशूल-परशु का प्रदर्शन देखने को मिलता है।

कुछ सिक्के ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जिन पर शिव का प्रदर्शन पशु रूप में किया गया है। इण्डोसीथियन राजा, जिसका नाम ज्ञात नहीं है, के स्वर्ण सिक्को पर बैलाकृति है। ग्रीक तथा खरोष्ठी मे 'तउरस' तथा 'उसामे' शब्द अंकित हैं। हूण राजा मिहिरकुल के सिक्को पर भी यही पशु रूप देखने को मिलता है। उन पर 'जयतु ब्रस' लिखा हुआ है।

विष्णु

मनुष्य की चेतना, ज्ञान एवं अनुभव ने उसे जीवन के तीन चरणों से परिचित कराया : जन्म, पोषण एवं संहार। इन तीनों चरणों में उसने ईश्वर के अलग-अलग स्वरूप के दर्शन किए। सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा, पोषण करने वाले विष्णु तथा संहार करने वाले शिव। एक ही ईश्वर के ये तीन रूप त्रिमूर्ति मे सजग हो उठे। पुराणो मे त्रिदेव का उल्लेख है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश पुराणो के आराध्य देव है। विष्णु पुराण विष्णु को ही परम ईश्वर मानता है तथा उनके तीन स्वरूपों मे उन्ही के गुणो का वर्णन करता है। विष्णु रजोगुण मे ब्रह्मा, सत्व गुण मे विष्णु और तामसी गुणो में शिव हो जाते हैं। वह ब्रह्मा रूप मे सृष्टि की रचना करते है, विष्णु रूप में पालन करते हैं और शिव रूप मे संहार करते हैं। श्रीमद्भागवत के अनुसार विष्णु अपनी योग माया से रचना, पालन एवं संहार करते है। अपनी माया से वह सासारिक व्यवहार का सृजन करते हैं। वह क्षिति, जल पावक, गगन एवं समीर पंचतत्वो की रचना कर इन पंचतत्वो के सम्मिश्रण से संसार की रचना करते हैं।

विष्णु का पोषक सुन्दर एवं मनोरम स्वरूप जीव के हृदय मे रम गया और

विष्णु के इस स्वरूप की पूजा लोकप्रिय हो गई। विष्णु कालान्तर मे अपने अवतारो मे अधिक पूज्य हो गए। उन्ही के अवतार राम एव कृष्ण भारत ही क्या आज विदेशो मे भी लोगों के हृदय मे बस गए हैं। उनके विभिन्न अवतार उनकी शक्ति एव गुणों से परिचित कराते हैं।

विष्णु के अवतारो के विषय मे विभिन्न ग्रथो से अलग-अलग विवरण प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि इस विषय पर विद्वानो के विभिन्न मत होगे। विष्णु के दशावतार लगभग सर्व माननीय हैं। ये दशावतार हैं—

मत्स्य अवतार	परशु अवतार
कूर्म अवतार	राघव राम अवतार
वराह अवतार	कृष्ण अवतार
नृसिंह अवतार	बलराम या बुद्ध अवतार
वामन अवतार	कल्कि अवतार

कुछ विद्वान बुद्ध को विष्णु का अवतार नही मानते तथा बुद्ध के स्थान पर बलराम को विष्णु का अवतार मानते हैं। अवतार विभिन्न पौराणिक कथाओ से सबद्ध हैं।

मत्स्य अवतार

विष्णु का प्रथम अवतार है। भगवत पुराण के अनुसार जिस समय पृथ्वी समुद्र मे समा गई, उस समय शक्तिशाली दानवपति मायाग्रीव ब्रह्मा के वेदो को लेकर जल साम्राज्य मे विलीन हो गया। इस विपत्ति मे देवो ने विष्णु की प्रार्थना की कि वे उनकी सहायता करें तथा वेदो को जल साम्राज्य से वापस लाएं। विष्णु प्रगट हुए। उन्होंने सफरी मीन का रूप धारण कर जल मे प्रवेश किया तथा वेदो को ढूढ निकाला। विष्णु ने यह अवतार खोये हुए वेदो को समुद्र से ढूढ निकालने के लिए धारण किया।

विष्णु के मत्स्यावतार का दूसरा विवरण अग्नि पुराण मे प्राप्त होता है जो इस प्रकार है—मनु तप कर रहे थे। एक दिन जब वह क्रितमाला नदी के पास बैठे हुए जलाजलि ले रहे थे, उनकी जलाजलि मे एक मीन आ गई। मनु ने जैसे ही इस मीन को जल मे फेंकने का उपक्रम किया, मीन ने उन्हे पुकारते हुए कहा, "अरे सज्जन ! मुझे जल मे मत फेंको क्योकि मैं बडी मछलियो से भयभीत हू।" यह सुनकर मनु ने उसे एक पात्र मे रख दिया, किन्तु मीन ने अपना आकार बडा कर लिया। मीन ने मनु से अनुग्रह किया कि वे उसे एक बड़ा स्थान प्रदान करें। मनु ने उसे एक तालाब मे स्थान दिया। यहा भी उसका आकार बडा हो गया। मीन ने मनु से और बडा स्थान मागा। मनु ने इसे झील मे स्थान दिया किन्तु मीन का रूप वृहत् ही होता गया। उसका विस्तार सौ योजन हो गया।

मनु को बड़ा आश्चर्य हुआ। बाद में ज्ञानी मनु ने इस रहस्य का भेद पा लिया। उन्होंने विष्णु को सम्बोधित करते हुए कहा कि प्रभु आप नारायण हैं। मीन ने मनु को बताया कि आज से सातवें दिन समस्त विश्व समुद्र में समा जाएगा। इसलिए तुम सब प्रकार के बीज लेकर सात ऋषियों के साथ नाव मे सवार हो जाओ। इतना कहकर मीन अन्तर्धान हो गई। निश्चित दिन पर समुद्र ने अपनी सीमा का उल्लघन कर जोर पकडा। मनु नाव पर सवार हो गए और उन्होंने वही किया जैसा कि मीन ने उन्हें आदेश दिया था।

मत्स्यावतार की प्रतिमा या तो पूर्णतः मीन रूप में है या इसका अर्धभाग मानव का तथा अर्धभाग मीन का होता है। अधिकतर प्रतिमा चार हाथो की होती है जिसमे से दो हाथो मे शंख और चक्र होते हैं तथा दो हाथ अभय तथा वरद मुद्रा मे होते हैं। मस्तक पर किरीट मुकुट शोभायमान होता है। राव महोदय ने गढ़वा से प्राप्त मत्स्यावतार की चतुर्भुजी मूर्ति का उल्लेख किया है जिसका उपरोक्त भाग मानव का है। उनके चार हाथो की स्थिति वैसी है जैसी कि ऊपर बताई जा चुकी है। डॉक्टर इन्दुमति मिश्र ने ढाका जिले मे बज्रयोगिनी स्थान के समीप से प्राप्त एक मत्स्य प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसमे विष्णु अर्धमत्स्य के रूप में दिखाये गए हैं। विष्णु की चार भुजाओ मे पद्म, चक्र, गदा और शंख हैं। उनके दोनो ओर लक्ष्मी तथा सरस्वती शोभायमान हो रही हैं।

कूर्म अवतार

भागवत पुराण से ज्ञात होता है कि असुर तथा देवो द्वारा किए गए समुद्र मंथन के समय विष्णु ने कच्छप अवतार धारण कर उस पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर लिया था जो कि समुद्र मथन का माध्यम था।

यह अवतार या तो पूर्णतः पशु रूप अर्थात् कच्छप रूप मे या अर्धभाग कच्छप तथा अर्धभाग मानव रूप मे प्रदर्शित किया गया है। नीचे का भाग कच्छप का तथा ऊपर का भाग मानव का है। प्रतिमा के चार हाथ हैं जिनमे से दो शंख तथा चक्र लिए हुए हैं जबकि अन्य दो वरद तथा अभय मुद्रा मे हैं। प्रतिमा आभूषणो से सुसज्जित होती है तथा मस्तक पर किरीट मुकुट होता है।

वराह अवतार

जिस समय पृथ्वी समुद्र मे विलीन हो गई, उस समय उसे वापस लाने के लिए विष्णु ने यह अवतार धारण किया। एक दूसरे विवरण के अनुसार विष्णु ने इस रूप को धारण कर हिरण्याक्ष का वध किया था।

वराह अवतार की प्रतिमाए या तो पूर्णरूपेण पशु रूप मे हैं या अर्धभाग मानव का तथा अर्धभाग पशु का है। पृथ्वी को स्त्री रूप मे प्रदर्शित किया गया

है। पृथ्वी या तो वराह के दांतों में या उसकी हथेली पर है। उदयगिरि में वराह का मनोरम दृश्य देखने को मिलता है। यहां पृथ्वी कामायनी के रूप में वराह की दाढ़ पर बैठी हुई प्रदर्शित की गई हैं। बादामी की गुफा में पृथ्वी वराह के दो सशक्त हाथों में जकड़ी हुई हैं और वराह बड़े ध्यान से पृथ्वी की तरफ देख रहे हैं। बनर्जी महोदय ने इन प्रतिमाओं की भव्यता एवं आकर्षण की प्रशंसा की है। राव महोदय ने कई वराह प्रतिमाओं का उल्लेख किया है जो कि महाबलिपुरम, नागलपुरम, रायपुर, जोधपुर इत्यादि स्थानों से प्राप्त हुई हैं। कहीं पर पृथ्वी वराह की दाढ़ पर तथा कहीं पर वराह के हाथ पर विराजमान हैं।

वराह अवतार तीन रूपों में दिखाया गया है—

आदिवराह, भूवराह या नृवराह—आधा भाग मानव का तथा आधा भाग वराह का है। वराह अवतार के साथ भूदेवी हैं जिनको विष्णु समुद्र से वापस लाए हैं।

यक्ष वराह—विष्णु सिंहासन के मध्य बैठे हैं। उनके एक ओर लक्ष्मी तथा दूसरी ओर भूदेवी हैं।

प्रलय वराह—भूदेवी विष्णु के साथ सिंहासन पर बैठी हैं।

नृसिंह अवतार

प्रतिमा विज्ञान के दृष्टिकोण से यह अवतार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विष्णु ने नृसिंह अवतार हिरणाकश्यप का वध करने के लिए धारण किया था। हिरणाकश्यप को यह वरदान प्राप्त था कि वह न तो मनुष्य द्वारा और न पशु द्वारा मारा जाएगा। वर अनुसार हिरणाकश्यप ने शक्ति प्राप्त कर अत्याचार करने शुरू कर दिए। वह अपने को अजेय समझने लगा। देवों ने विष्णु से प्रार्थना की कि वह दैत्य का नाश कर धरा के भार को हल्का करें। इस पर विष्णु ने अर्धमानव तथा अर्धपशु का रूप धारण कर हिरणाकश्यप का संहार कर दिया।

नृसिंह अवतार का प्रदर्शन या तो सिंह द्वारा या मानव रूप में किया जाता है। नीचे का भाग मानव का तथा ऊपर का भाग सिंह का होता है। नृसिंह को हिरणाकश्यप को मारते हुए दिखाया गया है। इस दशा में विष्णु के दो हाथ हिरणाकश्यप को समाप्त करने में लगे हैं। उनके अन्य दो हाथों में अस्त्र-शस्त्र होते हैं। एलोरा में नृसिंह का वीभत्स रूप तो देखते ही बनता है। सिंह मुख पर बड़ी-बड़ी घुंघराली जटाएं प्रदर्शित की गई हैं। उनके मस्तक पर किरीट मुकुट शोभायमान हो रहा है। नृसिंह अपने दो हाथों से उत्तरी जांघ पर पड़े असहाय हिरणाकश्यप के वदन को विदार रहे हैं। प्रतिमा को देखकर डर लगता है और सर्वशक्तिमान ईश्वर का वीभत्स स्वरूप मानव के सम्मुख उभरकर आ

जाता है।

नृसिंह प्रतिमाएं पांच प्रकार की हैं—

केवल नृसिंह—यहां पर हम केवल नृसिंह की ही प्रतिमा पाते हैं। यह सिंहासन पर बैठे हुए हैं। कुछ प्रतिमाएं खड़ी अवस्था में भी प्राप्त हुई हैं किन्तु ऐसी प्रतिमाएं कम हैं।

योग नृसिंह—यहां नृसिंह सिंहासन पर योगमुद्रा में बैठे हुए दिखाये गए हैं।

लक्ष्मी नृसिंह—नृसिंह लक्ष्मी के साथ विराजमान हैं। उनके इस स्वरूप का वर्णन राव महोदय ने किया है।

यानक नृसिंह—नृसिंह गरुड़ के कंधे पर बैठे हैं और शेषनाग उनके सिर पर अपने फण फैलाये साया कर रहे हैं। राव महोदय ने यानक नृसिंह का वर्णन किया है।

स्थानक नृसिंह—स्थानक नृसिंह का नीचे का भाग मानव का तथा ऊपर का भाग सिंह का है। यह प्रतिमा प्रायः चार हाथों की होती है जिनमें से दो हाथों में आयुध हो सकते हैं। प्रतिमा के अनेक हाथ भी दर्शाये जा सकते हैं जिनमें विभिन्न आयुध हो सकते हैं। विष्णु के दो हाथ हिरणाकश्यप का वध करने में संलग्न होते हैं। एलोरा में बहुत ही सुन्दर दृश्य देखने को मिलता है। हिरणाकश्यप को विष्णु के साथ लड़ते हुए दिखाया गया है। वह अपने हाथ में नंगी तलवार लिए खड़ा है। विष्णु उसे मारने को तत्पर हैं।

वस्तुतः यह प्रतिमा साम्प्रदायिक है जो कि विष्णु को शिव से श्रेष्ठ सिद्ध करने का एक सफल प्रयास है। हिरणाकश्यप शिव का भक्त कहा जाता है और उसका पुत्र प्रह्लाद विष्णु का। हिरणाकश्यप ने अपने पुत्र प्रह्लाद से विष्णु की पूजा छुड़ाने का अथक प्रयास किया। उसे विभिन्न प्रकार की यातनाएं दीं किन्तु प्रह्लाद ने विष्णु की पूजा न छोड़ी। अन्त में प्रह्लाद की रक्षा के लिए विष्णु ने नृसिंह अवतार धारण कर हिरणाकश्यप का वध कर दिया।

वामन अवतार

बलि ने, जो कि प्रह्लाद का पोता था, धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा देवताओं को अपनी शक्ति से भयभीत कर दिया। इन्द्र उसकी निरन्तर बढ़ती शक्ति देखकर अपने सिंहासन के प्रति सशंकित हो उठे। उसने अपनी यह शंका अपनी मां आदिती के समक्ष रखी। मां आदिती ने विष्णु को अपने पुत्र के रूप में पैदा होने तथा असुरों के नाश करने की प्रार्थना की। विष्णु आदिती के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। जब वे युवा हुए तो उन्होंने उस स्थान के लिए प्रस्थान किया जहां बलि यज्ञ कर रहे थे। विष्णु ने बलि से कुछ भूमि दान स्वरूप मांगी। बलि ने अपने दानी स्वभाववश भूमि देने का आश्वासन दे दिया। इस पर युवा ब्राह्मण

ने अति विशाल रूप धारण कर एक पग से सम्पूर्ण भूलोक और दूसरे से अंतरिक्ष लोक नाप लिया। उनके तीसरे पग के लिए कुछ भी नहीं बचा। इस पर बलि ने वामन से अपना सिर नाप लेने को कहा। वामन बलि से प्रसन्न हो गए और उन्होंने बलि को पाताल लोक भेज दिया।

वैखानसागम् के अनुसार वामन की प्रतिमा की ऊपर से नीचे तक की ऊंचाई 56 अंगुल होनी चाहिए। उनकी दो भुजाएं होनी चाहिए जिनमे से एक मे कमण्डल तथा दूसरे मे छतरी होनी चाहिए। कानो मे कुण्डल होने चाहिए। हाथ में पुस्तक होनी चाहिए। यह प्रतिमा ब्राह्मण ब्रह्मचारी लड़के के रूप मे प्रदर्शित की जानी चाहिए। कुछ विद्वानो के अनुसार वामन को एक युवा लड़के के रूप मे न होकर पूर्णत: विकसित पुरुष के रूप मे प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

विष्णु को ब्रह्मचारी के रूप मे दिखाया गया है। वे अपने हाथो मे कमडल तथा पुस्तकें लिए हो सकते हैं। कभी-कभी वह विष्णु के शस्त्र धारण किए दिखाए जाते हैं। एलोरा की एक दशावतार गुफा मे वामन ब्रह्मचारी अपने हाथों में कमंडल तथा दण्ड धारण किए त्रिविक्रम की प्रतिमा के ऊपर उठे हुए चरण के नीचे खड़े प्रदर्शित किए गए हैं। बलि तथा उनकी पत्नी वामन के सम्मुख खड़ी है। बलि अपने हाथ मे कमण्डल से जल ले रहे हैं। उनके पास ही खड़े शुक्र उन्हें ऐसा करने से मना कर रहे हैं। राव महोदय ने कलकत्ता म्यूजियम मे सग्रहित वामन प्रतिमा का उल्लेख किया है। यहां वामन अपने हाथो मे कमण्डल, दण्ड एवं छत्र लिए हुए हैं। वामन बलि से पृथ्वी मांग रहे हैं और बलि की पत्नी एवं शुक्र बलि के पीछे खड़े विस्मय मे देख रहे हैं। बनर्जी महोदय ने भी बादामी के अवशेषो से प्राप्त एक वामन प्रतिमा का उल्लेख किया है। वामन के हाथों मे दण्ड, कमण्डल है तथा उनके सिर पर छत्र शोभायमान हो रहा है। उनकी कमर मे बधी मोटी मेखला तो देखते ही बनती है।

डॉक्टर अवस्थी ने खजुराहो के वामन मन्दिर मे वामन की एक भव्य मूर्ति का उल्लेख किया है। प्रतिमा सभी आभूषणो से सुसज्जित है तथा उसके शरीर के अवयव छोटे हैं। उनकी भुजाएं खण्डित अवस्था मे हैं और बाल घुंघराले हैं। उनके बाईं तथा दाईं ओर क्रमश: चक्र और शंख पुरुष मूर्तमान है। भूदेवी का प्रदर्शन शंख पुरुष के पीछे किया गया है जबकि गरुड चक्र पुरुष के पीछे है। वामन के सिर के पीछे दर्शाई गई प्रभावली मे एक कोने में ब्रह्मा तथा दूसरे कोने में शिव विद्यमान हैं।

वामन अवतार का दूसरा रूप त्रिविक्रम है। स्थापत्य मे त्रिविक्रम की [प्रतिमा का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है। बाया पैर दाहिने घुटने के बराबर नाभी तक उठा हुआ है या मस्तक तक उठा हुआ है। त्रिविक्रम के चार या आठ हाथ होने चाहिए। वे अपने दाहिने हाथ मे चक्र तथा बाएं हाथ मे शख लिए हुए हो

सकते हैं। दूसरे दाहिने हाथ की हथेली ऊपर की ओर है और बायां हाथ ऊपर उठे हुए पैर के बराबर है। दाहिना और बायां हाथ अभय तथा वरद् मुद्रा में भी हो सकता है। त्रिविक्रम के आठ हाथ होने पर पांच हाथो में शख, चक्र, गदा, सारंग और हल और दूसरे तीन हाथ पहले जैसे होते हैं। राव महोदय ने त्रिविक्रम की एक बीभत्स प्रतिमा का उल्लेख किया है। प्रतिमा का मुख अमानुष-सा है। उनकी बडी-बडी आखें फैली हुई हैं तथा मुख ऊपर की ओर उठा हुआ है। त्रिविक्रम के फैले हुए हाथ मे अंगुलिया बाहर की ओर फैली हुई हैं। डॉक्टर इन्दुमति मिश्र ने अपने ग्रन्थ मे ढाका जिले में जरादुल स्थान से प्राप्त काले पत्थर मे निर्मित त्रिविक्रम की चतुर्भुजी प्रतिमा का उल्लेख किया है। यहा त्रिविक्रम अपने हाथो मे चक्र, गदा, पद्म तथा शंख धारण किए हुए हैं। उनका बाया पैर ऊपर की ओर उठा हुआ है। प्रतिमा इतनी सुन्दर ढंग से शिल्पित है कि ऐसा लगता है कि त्रिविक्रम अपने पग से तीनो लोक नापने को तत्पर हैं।

परशुराम अवतार

क्षत्रियो ने हिंसात्मक प्रवृत्ति को बढावा दिया। क्षत्रियों की हिंसात्मक प्रवृत्ति के दमन हेतु तथा दोषी क्षत्रियो को दण्ड देने के लिए विष्णु ने परशुराम का अवतार धारण किया। उनको मुख्यतः कार्तिवीर को दण्ड देना था। विष्णु का यह अवतार उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिणी भारत मे अधिक प्रसिद्ध है। परशुराम का मुख्य शस्त्र परशु है। यदि उनके चार हाथ प्रदर्शित किए गए हैं तो उनमे विष्णु के आयुध होंगे। यदि उनके बढ़कर हैं तो उनमें विविध आयुध होगे। उनके हाथ में परशु अवश्य होगा। बनर्जी महोदय ने कई परशुराम प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। ढाका से प्राप्त चतुर्भुजी प्रतिमा के हाथो में परशु, गदा, शंख एवं चक्र है। परशुराम के सिर पर जटाएं हैं। परशुराम की दो भुजा वाली प्रतिमा मे उनका बायां हाथ कमर पर रखा है तथा दाहिना हाथ परशु धारण किए है। यह प्रतिमा भी जटायुक्त है। डॉक्टर रामाश्रय अवस्थी ने भी अपने ग्रन्थ में पार्श्वनाथ मन्दिर से प्राप्त परशुराम प्रतिमाओं पर प्रकाश डाला है। परशुराम की चार भुजाएं हैं जिनमें वे परशु, पद्म, शंख तथा चक्र धारण करते हैं। सिर पर किरीट मुकुट शोभायमान होता है और गले में बनमाला पड़ी हुई है।

राम

जैसा कि विदित है कि राम क्षत्रिय थे और राजा दशरथ के पुत्र थे। उनका अवतार दुष्टों का संहार करने के लिए हुआ था। उन्होंने लंकापति रावण का विनाश कर धरा का भार हल्का किया तथा देवो का कल्याण किया था।

उन्हें या तो अकेला या अपने भ्राता लक्ष्मण तथा पत्नी सीता के साथ दिखाया गया है। उनके हाथ में धनुष बाण है जो उनके मुख्य शस्त्र हैं। उनकी प्रतिमाएं भारी संख्या मे प्राप्त होती हैं। बनर्जी महोदय का कथन है कि मध्य काल मे राम की मूर्तियां केवल भारत मे ही नही अपितु इण्डोचीन तथा इण्डोनेशिया के मंदिरों में भी स्थापित की जाती थी और जननायक राम विश्व के कई तत्कालीन देशो में प्रसिद्ध थे। आज भी यूरोप और अमेरिका में हरे राम हरे कृष्ण के नारे लग रहे हैं और उनके विदेशी भक्तो की सख्या बढ रही है। इसका कारण शायद राम का मनोरम, सुन्दर एव सरल स्वरूप ही तो है। राम को विष्णु का अवतार माना गया है। दशरथी राम को हम उसी रूप मे देखते हैं। उनका नाम राम तो आदिकाल से अनादि अनन्त ईश्वर का पर्यावाची है जिसे शिव जपते हैं। राम का नाम ईश्वर का नाम माना जाता है जिसके उच्चारण मात्र से क्लेश का निवारण होता है।

कृष्ण

कृष्ण की जीवन कथा विभिन्न घटनाओ से परिपूर्ण है। उनके जीवन की बहुत-सी घटनाए स्थापत्य मे देखने को मिलती है।

स्थापत्य मे कृष्ण को बाल रूप, तरुण तथा युवा रूप दिखाया गया है। कृष्ण के बाल्यकाल की प्रतिमाए बालकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहा हम कृष्ण की कुछ महत्त्वशाली प्रतिमाओ पर प्रकाश डालेंगे :

नवनीति कृष्ण—कृष्ण को हम बालक रूप मे पाते हैं। वह अपने हाथ मे मक्खन लिए हुए है तथा प्रसन्नता से नाच रहे हैं।

वेनु गोपाल—कृष्ण को तरुण रूप में पाते हैं। वे ग्वालो के साथ गाय चरा रहे है। अपने साथी ग्वालो मे बंसी बजा रहे है।

सारथी कृष्ण—इस रूप मे हम कृष्ण को अर्जुन के सारथी रूप मे पाते हैं। वह अर्जुन को गीता का ज्ञान दे रहे हैं। कृष्ण घोडों की लगामे पकडे हैं और वह व्याख्यान मुद्रा मे हैं। अर्जुन उनके सम्मुख हाथ जोडे बैठे हैं। प्रतिमा विज्ञान के दृष्टिकोण से यह मूर्ति अत्यन्त महत्त्वशाली है। त्रिपालीकन के पार्थ सारथी मन्दिर में पार्थ सारथी का रूप सचमुच देखते ही बनता है। मध्य मे एक प्रतिमा पूर्व की ओर मुख किए खड़ी है। समीप ही द्विभुजी कृष्ण प्रतिमा है। कृष्ण के एक हाथ मे शंख तथा दूसरा वरद् मुद्रा मे है। उनके शरीर पर कवच है। कृष्ण के समीप रुक्मिणी विराजमान हैं जिनके हाथो में से एक मे कमल है तथा दूसरा हाथ नीचे लटक रहा है। सात्यकी की प्रतिमा भी यहा देखने को मिलती है।

उपरोक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त कृष्ण की कुछ अन्य प्रतिमाए भी हैं जो कि प्रतिमा विज्ञान के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनमे से कुछ का हम

उल्लेख करेंगे।

कालीदमन मूर्ति—कृष्ण को सर्प काली के फण पर खड़े दिखाया गया है। यह मूर्ति नागदेव पर कृष्ण की श्रेष्ठता सिद्ध करती है। हम जानते हैं कि प्राचीन भारत में नागों एवं यक्षों की पूजा साधारण जनता में अधिक प्रचलित थी। यहां तक कि जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के नाग सेवक हैं। कृष्ण द्वारा कालीदमन यह सिद्ध करने का सफल प्रयास है कि कृष्ण नाग देवताओं के स्वामी हैं और उनसे अति श्रेष्ठ हैं।

गोवर्धनधारी कृष्ण—इन्द्र का ऋग्वैदिक काल से ही अधिक महत्त्व था। कृष्ण के प्रभाववश जनता ने इन्द्र की पूजा के स्थान पर कृष्ण की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी। इन्द्र यह देखकर क्रोधित हो गए। उन्होंने घोर वर्षा कर गोवर्धन को डुबो देने का प्रयत्न किया। इस पर कृष्ण ने अपनी कनिष्ठ उंगली पर गोवर्धन पहाड़ को उठा लिया और वहां के निवासियों की रक्षा की। इन्द्र की महानता कम हो गई। कृष्ण की पूजा प्रचलित हो गई। ऋग्वैदिक देव इन्द्र एवं वरुण दिकपालों के स्तर के माने जाने लगे। इन्द्र या वरुण का एक भी मन्दिर हमें देखने को नहीं मिलता है जबकि कृष्ण के मन्दिर हर स्थान पर प्राप्त होते हैं। गोवर्धनधारी कृष्ण की मूर्ति निःसन्देह उनकी इन्द्र पर श्रेष्ठता स्थापित करती है।

रुक्मिणी के साथ कृष्ण की प्रतिमाएं इतनी सुन्दर हैं कि उनका उल्लेख यहां करना शायद आवश्यक है। कृष्ण रुक्मणी की प्रतिमा मद्रास संग्रहालय में देखने को प्राप्त होती है। रुक्मणी कृष्ण के बाएं भाग के पास दिखाई गई है। कृष्ण के दाहिने हाथ में चक्र शोभायमान हो रहा है तथा बायां हाथ रुक्मणि के स्कन्ध पर रखा है। नीलोत्पल रुक्मणि के बाएं हाथ की शोभा बढ़ा रहा है। कृष्ण के कानों में कुण्डल झलकते हैं तथा गले में हार शोभायमान हो रहा है। राव महोदय ने कृष्ण की मथुरा म्यूजियम में संग्रहित प्रतिमा का उल्लेख किया है। कृष्ण का एक हाथ पास में खड़ी देवी स्कन्ध पर तथा दूसरे हाथ में चक्र है। देवी पुष्प मालाओं से सुसज्जित है। बलराम हल मूसल लिए देवी के समीप खड़े प्रदर्शित किए गए हैं।

बलराम या बुद्ध

कुछ विद्वान बुद्ध को विष्णु का अवतार न मानकर बलराम को विष्णु का अवतार मानते हैं जबकि कुछ विद्वान बुद्ध को ही विष्णु का अवतार मानते हैं। मथुरा से प्राप्त प्रतिमा में बलराम अपने दो हाथों में हल मूसल धारण किए हुए सर्प छत्र के नीचे खड़े हैं। उनके सिर पर पगड़ी बंधी है तथा वह छोटी ऊंची धोती धारण किए हैं। उनका दाहिना पैर कुछ मुड़ा हुआ है और वह कान में कुंडल पहने हैं।

बुद्ध को समस्त विश्व भली-भाति जानता है और उनका आदर करता है। उनकी मूर्तियां बडी संख्या मे विभिन्न धातुओ तथा स्थापत्य में उत्कृष्ट रूप मे देखने को मिलती हैं। ये मूर्तिया विभिन्न मुद्राओ मे हैं। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जो कि भारतीय प्रतिमाओं के मध्य एक कलात्मक आभूषण है। ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा विष्णु के दसावतारों के साथ देखने को प्राप्त होती है। राव महोदय ने विष्णु की योगेश्वर, चन्नकेशव एवं दत्तात्रेय मूर्तियो का उल्लेख किया है। यहा बुद्ध ध्यान मुद्रा मे पद्मासन पर विराजमान है। ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा बोरोबुडूर नामक स्थान से भी प्राप्त हुई है। योगासन लगाये बैठे बुद्ध बडी शान्त मुद्रा मे दोनों नेत्र बन्द किए हुए हैं। उनके दोनो हाथ उनकी गोद मे हैं। उनका ध्यान मग्न सौम्य मुख आभायमान हो रहा है।

कल्कि

यह अवतार भविष्य मे होगा ऐसा माना जाता है। कल्कि घोड़े पर सवार होंगे तथा उनके हाथों में नगी तलवार होगी।

स्थापत्य मे विष्णु के कुछ विशिष्ट स्वरूप दर्शाती प्रतिमाएं हैं जिनमें से कुछ का उल्लेख हम यहा करेंगे और विष्णु के इन स्वरूपों को समझने का भी प्रयास करेंगे।

गजेन्द्र मोक्ष रूप

विष्णु का गजेन्द्र मोक्ष स्वरूप आज भी उतना लोकप्रिय है जितना कि अतीत मे था। विष्णु के उपासक यह कहते हैं कि विष्णु इतने कृपालु हैं कि उन्होंने गज की दीन पुकार सुनकर ग्राह का वध कर उसके प्राणो की रक्षा की और जब भी उनके भक्तो पर कोई संकट आता है और वह सच्चे हृदय से उनका स्मरण करता है, विष्णु उसके सकट का निवारण करते हैं। कांची के वरदराज विष्णु मन्दिर मे विष्णु के गजेन्द्र मोक्ष स्वरूप को सुन्दरता से दर्शाया है। गरुड़ के स्कन्ध पर विराजमान विष्णु पीछे के दाहिने हाथ मे चक्र धारण कर गजराज की रक्षा कर रहे हैं। उनके अन्य तीन हाथो मे शख, पद्म तथा गदा हैं। मगर ने गज का पैर पकडा हुआ है और उसकी पीठ पर चक्र प्रदर्शित किया गया है। इस प्रतिमा का उल्लेख राव महोदय के ग्रन्थ मे मिलता है। वरदराज की एक अन्य प्रतिमा दाडिकोम्बू मे प्राप्त होती है। विष्णु गरुड पर विराजमान हैं। विष्णु की आठ भुजाएं हैं जिनमे वे खडग, खेटक, शंख, गदा, चक्र, धनुष, बाण तथा पद्म धारण किए हुए है। दाडिकोम्बू की इस वरदराज प्रतिमा के अतिरिक्त राव महोदय वरदराज की एक अन्य प्रतिमा को भी प्रकाश मे लाते हैं। देवगढ से प्राप्त इस प्रतिमा मे गजेन्द्र के पैरो को नाग ने जकड़ रखा है। दक्षिण

भारतीय मूर्तियो मे नाग को ग्राह का समरूप माना गया है। प्राय: मगर की जगह नाग का चित्रण किया गया है। यहां विष्णु उड़ते हुए गरुड़ पर आसीन हैं। गजराज अपनी सूंड मे माला लिए विष्णु को अर्पण कर रहा है। राव महोदय ने इस प्रतिमा को बडा भव्य एव आकर्षक कहा है। विष्णु की ये प्रतिमाएं विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देव के रूप मे हमारे सम्मुख रखती हैं और उन्हें नाग, नर, किन्नर, गन्धर्व सभी के आराध्य देव के रूप में प्रदर्शित करती हैं।

जलासन मूर्ति

विष्णु का निवास-स्थान क्षीर सागर कहा गया है जहा वह शेष शैया पर शोभायमान होते हैं। नीलोत्पल उनके आभूषण हैं और लक्ष्मी उनकी सहभागिनी। शिव का निवास-स्थान कैलाश पर्वत है, विष्णु का क्षीर सागर। महादेव पर्वत शिखर पर विराजमान होते हैं, विष्णु अथाह समुद्र मे निवास करते हैं। शिव योग दर्शन साधना के प्रतीक हैं तो विष्णु वैभव एव ऐश्वर्य से परिपूरित ब्रह्माड के संरक्षक हैं। राव महोदय ने विष्णु की जलासन मूर्ति को विष्णु की आदि मूर्ति माना है। मद्रास जिले म दाडिकोम्बू नामक स्थान मे वरदराजप्परमाल मन्दिर के एक स्तम्भ पर विष्णु के इस स्वरूप का प्रदर्शन है। शेष शैया पर विष्णु विराजमान हैं। शेषफण उनके सिर पर क्षत्र बना रहे हैं। विष्णु का बाया पैर शेष शैया पर तथा दाहिना पैर नीचे लटक रहा है। गरुड़ अंजलिबद्ध मुद्रा मे खडे हैं। उनके आयुध शख, चक्रादि मूर्तिमान हैं। राव महोदय ने नगेहल्ली मे विष्णु की जलशायिन प्रतिमा का उल्लेख किया है। विष्णु यहा शेष शैया पर विराजमान है। शेष के सात फण उनके ऊपर छत्र बना रहे हैं। विष्णु की मूर्ति चतुर्भुजी है। उनके दो हाथो मे शख तथा चक्र हैं। अन्य दो हाथो मे स दाहिना हाथ शेष शैया पर तथा बाया हाथ बाहर की ओर लटका हुआ है। उनके बाई ओर ब्रह्मा एव शिव तथा दाहिनी ओर गरुड़ अलीढ़ मुद्रा मे प्रदर्शित हैं। विभिन्न आभूषणो से अलकृत विष्णु की पत्थर की यह भव्य प्रतिमा इतनी सुन्दर है कि देखते ही बनती है।

झासी जिले के देवगढ़ मन्दिर मे विष्णु की शेष शैया मूर्ति विशिष्ट है। विष्णु के सिर पर शेषनाग के फणो का छत्र है। विष्णु शेषनाग पर लेटे हुए हैं। उनका बाया पैर शेष शैया पर तथा दाहिना लक्ष्मी की गोद में रखा है। उनकी नाभि मे कमल की नाल उद्भूत हो रही है। कमल पर चतुर्भुजी ब्रह्मा विराजमान हैं। विष्णु के आयुध मूर्तमान हैं। उत्तर भारतीय विष्णु की जलशायिन मूर्ति मे इस तरह की मूर्तिया बहुत कम देखने को मिलती हैं।

बुद्ध को समस्त विश्व भली-भांति जानता है और उनका आदर करता है। उनकी मूर्तियां बडी संख्या में विभिन्न धातुओ तथा स्थापत्य मे उत्कृष्ट रूप मे देखने को मिलती हैं। ये मूर्तिया विभिन्न मुद्राओ मे हैं। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जो कि भारतीय प्रतिमाओं के मध्य एक कलात्मक आभूषण है। ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा विष्णु के दशावतारों के साथ देखने को प्राप्त होती है। राव महोदय ने विष्णु की योगेश्वर, चन्नकेशव एवं दत्तात्रेय मूर्तियों का उल्लेख किया है। यहां बुद्ध ध्यान मुद्रा मे पद्मासन पर विराजमान है। ध्यानी बुद्ध की प्रतिमा बोरोबुडूर नामक स्थान से भी प्राप्त हुई है। योगासन लगाये बैठे बुद्ध बड़ी शान्त मुद्रा मे दोनों नेत्र बन्द किए हुए हैं। उनके दोनों हाथ उनकी गोद में हैं। उनका ध्यान मग्न सौम्य मुख आभायमान हो रहा है।

कल्कि

यह अवतार भविष्य में होगा ऐसा माना जाता है। कल्कि घोड़े पर सवार होंगे तथा उनके हाथों में नंगी तलवार होगी।

स्थापत्य मे विष्णु के कुछ विशिष्ट स्वरूप दर्शाती प्रतिमाए हैं जिनमे से कुछ का उल्लेख हम यहा करेंगे और विष्णु के इन स्वरूपों को समझने का भी प्रयास करेंगे।

गजेन्द्र मोक्ष रूप

विष्णु का गजेन्द्र मोक्ष स्वरूप आज भी उतना लोकप्रिय है जितना कि अतीत में था। विष्णु के उपासक यह कहते है कि विष्णु इतने कृपालु हैं कि उन्होने गज की दीन पुकार सुनकर ग्राह का वध कर उसके प्राणो की रक्षा की और जब भी उनके भक्तो पर कोई सकट आता है और वह सच्चे हृदय से उनका स्मरण करता है, विष्णु उसके सकट का निवारण करते हैं। काची के वरदराज विष्णु मन्दिर मे विष्णु के गजेन्द्र मोक्ष स्वरूप को सुन्दरता से दर्शाया है। गरुड के स्कन्ध पर विराजमान विष्णु पीछे के दाहिने हाथ मे चक्र धारण कर गजराज की रक्षा कर रहे हैं। उनके अन्य तीन हाथों मे शख, पद्म तथा गदा हैं। मगर ने गज का पैर पकडा हुआ है और उसकी पीठ पर चक्र प्रदर्शित किया गया है। इस प्रतिमा का उल्लेख राव महोदय के ग्रन्थ मे मिलता है। वरदराज की एक अन्य प्रतिमा दाडिकोम्बू में प्राप्त होती है। विष्णु गरुड पर विराजमान हैं। विष्णु की आठ भुजाए हैं जिनमे वे खडग, खेटक, शंख, गदा, चक्र, धनुष, बाण तथा पद्म धारण किए हुए हैं। दाडिकोम्बू की इस वरदराज प्रतिमा के अतिरिक्त राव महोदय वरदराज की एक अन्य प्रतिमा को भी प्रकाश मे लाते हैं। देवगढ से प्राप्त इस प्रतिमा मे गजेन्द्र के पैरों को नाग ने जकड़ रखा है। दक्षिण

भारतीय मूर्तियों में नाग को ग्राह का समरूप माना गया है। प्रायः मगर की जगह नाग का चित्रण किया गया है। यहां विष्णु उड़ते हुए गरुड़ पर आसीन हैं। गजराज अपनी सूंड में माला लिए विष्णु को अर्पण कर रहा है। राव महोदय ने इस प्रतिमा को बड़ा भव्य एव आकर्षक कहा है। विष्णु की ये प्रतिमाएं विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देव के रूप में हमारे सम्मुख रखती हैं और उन्हे नाग, नर, किन्नर, गन्धर्व सभी के आराध्य देव के रूप में प्रदर्शित करती है।

जलासन मूर्ति

विष्णु का निवास-स्थान क्षीर सागर कहा गया है जहां वह शेष शैया पर शोभायमान होते हैं। नीलोत्पल उनके आभूषण हैं और लक्ष्मी उनकी सहभागिनी। शिव का निवास-स्थान कैलाश पर्वत है, विष्णु का क्षीर सागर। महादेव पर्वत शिखर पर विराजमान होते हैं, विष्णु अथाह समुद्र मे निवास करते हैं। शिव योग दर्शन साधना के प्रतीक है तो विष्णु वैभव एव ऐश्वर्य से परिपूरित ब्रह्माड के संरक्षक हैं। राव महोदय ने विष्णु की जलासन मूर्ति को विष्णु की आदि मूर्ति माना है। मद्रास जिले म दाडिकोम्बू नामक स्थान मे वरदराजप्परमाल मन्दिर के एक स्तम्भ पर विष्णु के इस स्वरूप का प्रदर्शन है। शेष शैया पर विष्णु विराजमान हैं। शेषफण उनके सिर पर क्षत्र बना रहे हैं। विष्णु का बायां पैर शेष शैया पर तथा दाहिना पैर नीचे लटक रहा है। गरुड़ अंजलिबद्ध मुद्रा मे खड़े हैं। उनके आयुध शख, चक्रादि मूर्तिमान हैं। राव महोदय ने नगेहल्ली मे विष्णु की जलशायिन प्रतिमा का उल्लेख किया है। विष्णु यहा शेष शैया पर विराजमान है। शेष के सात फण उनके ऊपर छत्र बना रहे हैं। विष्णु की मूर्ति चतुर्भुजी है। उनके दो हाथों मे शख तथा चक्र हैं। अन्य दो हाथों मे स दाहिना हाथ शेष शैया पर तथा बाया हाथ बाहर की ओर लटका हुआ है। उनके बाई ओर ब्रह्मा एव शिव तथा दाहिनी ओर गरुड़ अलीढ़ मुद्रा मे प्रदर्शित हैं। विभिन्न आभूषणों से अलकृत विष्णु की पत्थर की यह भव्य प्रतिमा इतनी सुन्दर है कि देखते ही बनती है।

झांसी जिले के देवगढ़ मन्दिर मे विष्णु की शेष शैया मूर्ति विशिष्ट है। विष्णु के सिर पर शेषनाग के फणों का छत्र है। विष्णु शेषनाग पर लेटे हुए हैं। उनका बाया पैर शेष शैया पर तथा दाहिना लक्ष्मी की गोद में रखा है। उनकी नाभि मे कमल की नाल उद्भूत हो रही है। कमल पर चतुर्भुजी ब्रह्मा विराजमान हैं। विष्णु के आयुध मूर्तमान है। उत्तर भारतीय विष्णु की जलशायिन मूर्ति में इस तरह की मूर्तियां बहुत कम देखने को मिलती हैं।

विष्णु के चौबीस रूप

विष्णु के चौबीस रूपों मे उनके लक्षण तथा वेश-भूषा एक-सी है किन्तु उनके करो में उनके आयुध विभिन्नता के आधार पर इन रूपो की पहचान की जाती है। कहीं-कहीं ये आयुध मानव रूप में प्रदर्शित किए जाते हैं जो आयुध पुरुष के नाम से जाने जाते है। गदा पुरुष प्रदर्शित किया गया है तो उसके हाथ मे गदा होगा और विष्णु का एक हाथ उस पर रखा होगा। विष्णु के चौबीस रूपों की तालिका विभिन्न ग्रंथो मे मिलती है। रूप मंडल के अनुसार ये रूप इस प्रकार हैं :

केशव—केशव के ऊपरी दाहिने हाथ मे शख है और निचले दाहिने हाथ मे चक्र। ऊपरी बाएं हाथ मे पद्म है तो निचले बाएं हाथ मे गदा।

नारायण—नारायण के ऊपरी दाहिने हाथ मे पद्म है और नीचे के दाहिने हाथ मे गदा। ऊपरी बाएं हाथ मे शख है तो नीचे के बाए हाथ मे चक्र।

माधव—माधव के ऊपरी दाहिने हाथ मे चक्र है तो निचले दाहिने हाथ मे शख। ऊपरी बाए हाथ मे गदा है और निचले बाए हाथ मे पद्म।

गोविन्द—गोविन्द के ऊपरी दाहिने हाथ मे गदा है, निचले दाहिने हाथ में पद्म है। उनके ऊपरी बाएं हाथ में चक्र है और निचले बाए हाथ मे शख।

विष्णु—विष्णु के ऊपरी दाहिने हाथ मे पद्म है, निचले दाहिने हाथ मे शंख है। ऊपरी बाए हाथ मे गदा है और निचले बाए हाथ मे चक्र।

मधुसूदन—मधुसूदन के ऊपरी दाहिने हाथ मे शख है, निचले दाहिने हाथ मे पद्म है। ऊपरी बाएं हाथ मे चक्र है तथा निचले बाए हाथ मे गदा है।

त्रिविक्रम—त्रिविक्रम के ऊपरी दाहिने हाथ मे गदा है और निचले दाहिने हाथ में चक्र, ऊपरी बाए हाथ मे पद्म तथा निचले बाए हाथ मे शख।

वामन—वामन के ऊपरी दाहिने हाथ मे चक्र, निचले दाहिने हाथ मे गदा, ऊपरी बाए हाथ में शख तथा निचले बाए हाथ मे पद्म है।

श्रीधर—श्रीधर के ऊपरी दाहिने हाथ मे चक्र, निचले दाहिने हाथ मे गदा, ऊपरी बाए हाथ मे पद्म तथा निचले बाए हाथ मे शख है।

हृषिकेश—हृषिकेश के ऊपरी दाहिने हाथ मे चक्र, निचले दाहिने हाथ मे पद्म, ऊपरी बाएं हाथ मे गदा तथा निचले बाए हाथ मे शख है।

दामोदर—दामोदर के ऊपरी दाहिने हाथ मे शख, निचले दाहिने हाथ मे गदा, ऊपरी बाए हाथ मे पद्म तथा निचले बाए हाथ मे चक्र है।

संकर्षण—संकर्षण के ऊपरी दाहिने हाथ मे शख, निचले दाहिने हाथ मे पद्म, ऊपरी बाएं हाथ मे गदा तथा निचले बाए हाथ में चक्र है।

वासुदेव—वासुदेव के ऊपरी दाहिने हाथ मे शख, निचले दाहिने हाथ

चक्र, ऊपरी बाएं हाथ मे गदा तथा निचले बाए हाथ मे पद्म है।

प्रद्युम—प्रद्युम के ऊपरी दाहिने हाथ में शख, निचले दाहिने हाथ मे गदा, ऊपरी बाएं हाथ में चक्र तथा निचले बाएं हाथ मे पद्म हैं।

अनिरुद्ध—अनिरुद्ध के ऊपरी दाहिने हाथ मे गदा, निचले दाहिने हाथ मे शंख, ऊपरी बाएं हाथ में चक्र तथा निचले बाएं हाथ में पद्म है।

पुरुषोत्तम—पुरुषोत्तम के ऊपरी दाहिने हाथ मे पद्म, निचले दाहिने हाथ में शंख, ऊपरी बाएं हाथ मे चक्र तथा निचले बाए हाथ मे गदा है।

अधोछत्र—अधोछत्र के ऊपरी दाहिने हाथ मे गदा, निचले दाहिने हाथ में शख, ऊपरी बाएं हाथ मे पद्म तथा निचले बाए हाथ मे चक्र है।

नरसिह—नरसिह के ऊपरी दाहिने हाथ मे पद्म, निचले दाहिने हाथ में गदा, ऊपरी बाएं हाथ मे चक्र तथा निचले बाएं हाथ मे शख है।

अच्युत—अच्युत के ऊपरी दाहिने हाथ मे पद्म, निचले दाहिने हाथ मे चक्र, ऊपरी बाएं हाथ मे गदा तथा निचले बाए हाथ मे शख है।

जनार्दन—जनार्दन के ऊपरी दाहिने हाथ मे चक्र, निचले दाहिने हाथ मे शंख, ऊपरी बाएं हाथ मे पद्म तथा निचले बाएं हाथ मे गदा है।

उपेन्द्र—उपेन्द्र के ऊपरी दाहिने हाथ मे गदा, निचले दाहिने हाथ मे चक्र, ऊपरी बाए हाथ मे पद्म तथा शख हैं।

हल—हल के ऊपरी दाहिने हाथ में चक्र, निचले दाहिने हाथ मे पद्म, ऊपरी बाए हाथ मे शख तथा निचले बाए हाथ मे गदा है।

श्रीकृष्ण—श्रीकृष्ण के ऊपरी दाहिने हाथ मे गदा, निचले दाहिने हाथ मे पद्म, ऊपरी बाएं हाथ मे शख और निचले बाएं हाथ मे चक्र है।

पद्मनाभ—पद्मनाभ के ऊपरी दाहिने हाथ मे पद्म, निचले दाहिने हाथ मे चक्र, ऊपरी बाएं हाथ मे शंख तथा निचले बाएं हाथ मे गदा है।

अध्याय : छह

देवी

नारी सृष्टि की सृजन करने वाली है। यदि नारी न होती तो यह विश्व ही नहीं होता और न इसका यह मनोरम रूप। स्त्री का मनोरम रूप ही तो माया है और उसमें ही निहित है अनन्त शक्ति। मानव जीवन ही क्या नाग, किन्नर, गन्धर्व सभी का जीवन माया के अभाव में अपूर्ण है। ब्राह्मण देवताओं की छवि ही उनके साथ सुशोभित होने वाली देवी है। ऋग्वेद में इन्द्राणी, वरुणानी, रुद्राणी आदि देवियों का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण, आरण्यक एवं संहिताएं देवी का उल्लेख अम्बिका, दुर्गा, काली इत्यादि रूप में करते हैं। भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में संग्रहित देवी की स्तुतियां देवी स्वरूप की दिव्य दृष्टि प्रस्तुत करती है। सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग मातृशक्ति के उपासक थे, इस तथ्य से हम परिचित हैं। शाक्त सम्प्रदाय भारत का प्राचीनतम सम्प्रदाय है।

देवी के अनन्य रूपों का वर्णन हमें राव महोदय के ग्रन्थ में मिलता है। हम यहां देवी के कुछ प्रमुख स्वरूपों का ही उल्लेख करेंगे :—

लक्ष्मी

सब लोकों की शोभा लक्ष्मी से है। लक्ष्मी के सुन्दर मनोरम रूप ने समस्त ब्रह्माण्ड को आकर्षित कर रखा है। विभिन्न सम्प्रदाय के लोग लक्ष्मी की किसी न किसी रूप में पूजा करते हैं।

लक्ष्मी धन की देवी है जिसकी पूजा प्राचीन काल से ही सुख-सम्पत्ति प्राप्त करने की भावना से की जाती रही है। समुद्र मंथन भी तो लक्ष्मी को प्राप्त करने की भावना से किया गया था। लक्ष्मी समुद्र से प्रकट हुई और विष्णु की सह-भागिनी हो गई।

लक्ष्मी का स्वरूप सचमुच देखते ही बनता है। वह प्रायः पद्म पर आसीन है और अपने दोनों हाथों में कमल धारण करती हैं। उनके गले में कमल का हार सुसज्जित रहता है, और उन्हें विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित दिखाया जाता

है। उनके दोनों ओर खड़े हाथी प्रायः उन्हें स्नान कराते दिखाये जाते हैं। कमल से उनके अभिन्न सम्बन्ध के कारण उन्हें कमला या पद्मा के नाम से भी जाना जाता है।

अंशुमदभेदागम के अनुसार लक्ष्मी का वर्ण स्वर्णमय है जबकि विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार उनका वर्ण श्याम है। अंशुमदभेदागम के अनुसार लक्ष्मी को रत्नजडित स्वर्ण आभूषणों से सुसज्जित होना चाहिए। कमल के समान नेत्र, सुन्दर भौहें और उभरे हुए वक्षस्थल दिखाये जाने चाहिए। उनके सिर पर अनेक आभूषण होने चाहिए। उनके दाहिने हाथ मे कमल तथा बाए मे बिल्वफल धारण करना चाहिए। सुन्दर वस्त्र तथा उनकी कमर पर सुन्दर डिजाइनों से अलंकृत करधनी होनी चाहिए। शिल्परत्न के अनुसार लक्ष्मी श्वेत वर्ण हैं। उनके बाएं हाथ मे कमल तथा दाहिने हाथ मे बिल्वफल है। रत्नों के हार से देवी सुशोभित होती हैं। दो स्त्रिया उनके ऊपर चंवर डुलाती हैं।

विष्णु धर्मोत्तर लक्ष्मी की सुन्दर झाकी प्रस्तुत करता है। देवि आठ पंखुड़ियों वाले कमल सिंहासन पर विराजमान हैं। उनकी ऊपरी दाहिनी भुजा मे बडी नाल वाला कमल, ऊपर के बाए हाथ मे अमृतघट, नीचे के दाहिने हाथ मे बिल्वफल तथा बाएं हाथ मे शख है। वह केयूर एव ककण से सुशोभित होती हैं। उनके पीछे दो हाथी उन्हें अभिषेक कराते हैं।

अग्निपुराण मे लक्ष्मी को चार भुजा वाली बताया गया है। उनके बाए हाथो में गदा और कमल तथा दाहिने हाथों मे चक्र और शख होना चाहिए। अग्निपुराण मे ही उन्हें दो भुजा वाली भी कहा गया है। उनके दाहिने हाथ मे कमल तथा बाएं हाथ मे बिल्वफल होना चाहिए। लक्ष्मी को जब विष्णु के साथ प्रदर्शित किया जाता है तो वह प्रायः गौर वर्ण तथा श्वेत वस्त्र धारण करती हैं। राव महोदय ने कारवीर (आधुनिक कोल्हापुर) मे महालक्ष्मी के मन्दिर का उल्लेख किया है जिसमे शिल्पित महालक्ष्मी स्वरूप विश्व कर्मशास्त्र में वर्णित लक्ष्मी स्वरूप के साम्य है। लक्ष्मी को एक छोटी-सी कन्या के रूप मे विभिन्न आभूषणो से सुसज्जित नीचे के दाहिने हाथ मे पात्र, ऊपर के दाहिने हाथ मे गदा, नीचे के बाए हाथ मे बिल्व फल तथा ऊपर के बाएं हाथ मे खेटक लिए दिखाया गया है।

लक्ष्मी देवी का प्रदर्शन भरहुत, साची, बोधगया और अमरावती में भी कही कही देखने को मिलता है। यहा लक्ष्मी बैठी या खड़ी हुई अवस्था मे प्रदर्शित की गई हैं। उनके हाथो मे कमल हैं। दो हाथी उन्हे अभिषेक करा रहे हैं। भीटा तथा बसाढ से प्राप्त मुद्राओ पर लक्ष्मी आकृति देखने को मिलती है। खजुराहो से प्राप्त एक विष्णु प्रतिमा के केन्द्र मे लक्ष्मी कूर्म पर ध्यान मुद्रा में आसीन हैं। खजुराहो से ही हमें गरुड़ारूढ़ लक्ष्मी नारायण की भी प्रतिमा मिली

है। यहां विष्णु गरुड़ पर बैठे हैं और उनके उत्संग में लक्ष्मी विराजमान हैं। इलाहाबाद संग्रहालय में संग्रहित लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा में विष्णु लक्ष्मी को आलिंगनबद्ध किए हुए हैं और लक्ष्मी का एक हाथ विष्णु के गले में पड़ा है। राव महोदय ने बेलूर के छन्निगराय के मन्दिर में लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा का उल्लेख किया है। यहां विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित लक्ष्मी विष्णु की बाईं ओर प्रदर्शित की गई हैं। लक्ष्मी का एक हाथ विष्णु के गले में तथा दूसरे में वह कमल धारण करती हैं। विष्णु अपने एक हाथ से लक्ष्मी को कमर के पास से आलिंगन में लेते हुए दिखाये गए हैं। विष्णु का वाहन गरुड़ उनके पास खड़ा है। होयसलेश्वर के मन्दिर की भव्य लक्ष्मी नारायण प्रतिमा में लक्ष्मी विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित होकर विष्णु के वाम उत्संग पर विराजमान हैं। उनकी छवि देखते ही बनती है। चौरसी प्रचीघाटी (जिला : पुरी) में भी लक्ष्मी नारायण की भव्य प्रतिमा प्राप्त हुई है जो कि बारहवीं सदी ई० की है।

सरस्वती

सरस्वती को विद्या एवं ज्ञान की देवी माना जाता है। श्वेत वर्णा, अक्षमाला, वीणा, अंकुश एवं पुस्तक धारण करने वाली सरस्वती सहज में ही सबका मन मोह लेती हैं। उनका सम्बन्ध ब्रह्मा एवं शिव से बताया जाता है। उनका ब्रह्मा से सम्बन्धित होना शायद अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। ब्रह्मा, जिन्हें सृष्टि का निर्माता कहा जाता है, अपने सहज स्वरूप में विद्वान् एवं गहन शान्ति को समाहित करने वाले देव के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं। पुस्तक उनके कर का आभूषण है तथा ज्ञान ज्योति उनके मुख की आभा। सरस्वती का ज्ञानमय स्वरूप ब्रह्मा के स्वरूप के अनुरूप ही तो है। ऋग्वेद में सरस्वती के नाम का उल्लेख है। महाभारत उन्हें श्वेत कमलासीन, श्वेतवर्णा, करों में अक्षमाला, पुस्तक एवं वीणा धारण किए हुए दर्शाता है। स्कन्द पुराण के अनुसार सरस्वती के सिर पर जटाजूट, मस्तक पर अर्धचन्द्र, तीन नेत्र एवं नीलकण्ठ है। वह कमलासीन हैं। सरस्वती के इस स्वरूप के आधार पर ही शायद विद्वान उन्हें शिव से जोड़ते हैं। जटाजूट, अर्धचन्द्र, तीन नेत्र, चन्द्रमा के समान शीतलता, उनके त्रिकालदर्शी होने का संकेत करते हैं जबकि नीलकंठ होना दूसरों के विष को पीकर उन्हें अमृत पिलाने का बोध कराता है। गुणों के आधार पर सरस्वती, ब्रह्मा और शिव दोनों के करीब हैं।

सरस्वती कमल पर विराजमान होती हैं और वीणा बजाती हुई दिखाई जाती हैं। भारतीय संगीत की पावन धारा सरस्वती के पवित्र चरणों से प्रस्फुटित होती है। हंस उनका वाहन है जिसके श्वेत आभायुक्त पंख उज्ज्वलता एवं पवित्रता का बोध कराते है।

अंशुमदभेदागम् के अनुसार सरस्वती श्वेतवर्णा हैं एवं श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित श्वेत कमल पर आसीन होती हैं। उनका एक दाहिना हाथ अक्षमाला तथा दूसरा दाहिना हाथ व्याख्यान मुद्रा मे है। उनके बाएं हाथो मे पुस्तक और सफेद कमल है। उनके सिर पर जटा मुकुट शोभायमान होता है और वह विभिन्न आभूषणों से अलंकृत हो रही है। राव महोदय ने एक ऐसी ही प्रतिमा का उल्लेख किया है जो अंशुमदभेदागम् मे वर्णित सरस्वती के स्वरूप को साकार करती है।

विष्णु धर्मोत्तर सरस्वती को श्वेत कमल पर खडी और अपनी चार भुजाओ मे से दाहिने दोनों हाथो में अक्षमाला एव पुस्तक, बाएं हाथो मे कमण्डल तथा वीणा लिए हुए बताता है। ग्रन्थ के अनुसार खडी हुई प्रतिमाओ मे सरस्वती को समभंग रूप मे प्रदर्शित किया जाना चाहिए। मारकण्डेय पुराण के अनुसार उनके चार करों मे अकुश, वीणा, अक्षमाला और पुस्तक होनी चाहिए। राव महोदय के अनुसार देवी के इस स्वरूप का चित्रण होयसल मूर्तियो मे देखने को मिलता है।

डॉक्टर बनर्जी ने भरहुत के स्तम्भ पर अकित भव्य सरस्वती प्रतिमा का उल्लेख किया है। कमलासीन सरस्वती वीणा, अक्षमाला, पुस्तक एव कमण्डल धारण करती हैं। ककाली टीला से प्राप्त सरस्वती प्रतिमा सुन्दर आभूषणो से सुसज्जित है।

सरस्वती से बहती ज्ञान धारा का हम उनकी थोड़ी-सी साधना से स्वय मे आभास कर सकते है। उनसे प्रस्फुटित ज्ञान ज्योति हममे गम्भीरता, सहनशीलता एव विवेक को जन्म देती है।

पार्वती

पार्वती सबसे अधिक लोकप्रिय देवी है। वह जगत जननी हैं, जगत माता हैं। पार्वती शिव की अर्धागिनी हैं, गणेश और स्कन्द की माता है। श्रीमद्-भागवत मे उनके स्वरूप का चित्रण गणेश को अपनी गोद मे लिए हुए किया गया है। पार्वती चार भुजा वाली है। उनके हाथो मे अक्षमाला, शिव की मूर्ति, गणेश की मूर्ति तथा कमण्डल है। उनका निवास अग्निकुण्ड है। वह अपने दूसरे स्वरूप मे स्त्री रूप मे मगर की पीठ पर खड़ी हैं। उनके दो हाथो मे अक्षसूत्र तथा पद्म है और दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे है।

बादामी के ब्राह्मण शैल मन्दिरो की तीन शृंखलाओ मे प्रथम शृखला मे शिव की प्रख्यात अर्धनारीश्वर प्रतिमा है। प्रतिमा का दाहिना भाग शिव का तथा बाया भाग पार्वती का है। बर्गेस महोदय ने ठीक ही तो कहा है कि यह प्रतिमा शरीर उत्पत्ति के दो पहलुओ, पुरुष एव प्रकृति को दर्शाती है।

कैलाश गुफा मन्दिरो मे लकेश्वर मन्दिर मे पार्वती की एक विशिष्ट प्रतिमा

प्राप्त हुई है। पार्वती अग्नि ज्वालाओं के मध्य खड़ी दिखाई गई हैं। वह चतुर्भुजी हैं। उनके ऊपरी बाएं हाथ में गणेश की छोटी-सी प्रतिमा और ऊपरी दाहिने हाथ में शिवलिंग है। प्रतिमा की आधार शिला पर मगराकृति उद्भुत है।

खजुराहो के जगदम्बा मन्दिर में पार्वती की सुन्दर चतुर्भुजी मूर्ति है। पार्वती की प्रतिमाएं गणेश के साथ तथा गणेश एवं कार्तिकेय के साथ भी मिली हैं। यहां वह अपने ऊपरी करों में कमल धारण करती हैं।

दुर्गा

दुर्गा शक्ति एवं शौर्य का प्रतीक हैं। वह दुष्टों का संहार कर अपने भक्तों की रक्षा करती हैं। प्राचीन काल से ही देवी के इस अद्भुत रूप की बड़े-बड़े शूरवीरों ने आराधना की है और विजयश्री प्राप्त की है। दुर्गा देवी को संरक्षक देवी के रूप में प्रतिष्ठापित कर राजा-महाराजाओं ने अपने राज्य की रक्षा करने की केवल शक्ति ही नहीं प्राप्त की अपितु उनकी अनुकम्पा से अनेक संग्रामों में विजयश्री हासिल कर अपने राज्य का विस्तार भी किया। यही कारण है कि अनेक प्राचीन सिक्कों एवं मुद्राओं पर देवी के किसी न किसी स्वरूप का अंकन देखने को प्राप्त होता है। सिन्धु घाटी सभ्यता की मातृदेवी की छवि तो अद्वितीय है। इस देश की न जाने कितनी महिलाओं ने दुर्गा को स्वयं में समाहित कर दुष्टों का संहार किया है। ऐसी ही वीरांगनाओं में दुर्गावती एवं रानी लक्ष्मीबाई का नाम उल्लेखनीय है। कोई भी स्त्री आज भी जब कोई शौर्य का कार्य करती है, तो उसे दुर्गा कहा जाता है। भारत की नारी के रोम-रोम में दुर्गा समाहित है, जिसका परिचय हर वीरांगना देती है।

सुप्रभेदागम में दुर्गा की उत्पत्ति आदि शक्ति से बताई गई है। ग्रन्थ के अनुसार उनकी चार या आठ भुजाएं होनी चाहिए। आठ भुजाओं वाली प्रतिमा के हाथों में शंख, चक्र, शूल, धनुष, बाण, खड्ग, खेटक और पाश होना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर में दुर्गा के स्वरूप का बड़ा मनोरम चित्रण है। देवी सिंहासनारूढ़ हैं और उनकी आठ भुजाएं हैं। उनके दाहिने हाथों में बाण, शूल, खड्ग एवं चक्र है तथा वह अपने बाएं हाथों में शूल, चक्र, कपाल तथा चन्द्रबिम्ब लिए हुए हैं। आगम ग्रन्थों में दुर्गा के चार, आठ या बहु कर हैं। उनके त्रिनेत्र हैं और उनका वर्ण श्याम है। उनके शरीर को सुडौल एवं सुन्दर दर्शाया जाना चाहिए और विभिन्न आभूषणों से अलंकृत होना चाहिए। देवी के सिर पर करण्ड मुकुट सुशोभित होता है। जब उन्हें चतुर्भुजी दर्शाया जाए तो उनका सामने का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और पीछे के दाहिने हाथ में चक्र होना चाहिए। सामने का बायां हाथ कटक मुद्रा में तथा पिछले बाएं हाथ में शंख होना चाहिए। वह पद्मासन पर सीधी खड़ी दिखाई जाती हैं या भैंसे के सिर पर खड़ी दिखाई जा

सकती हैं, या सिंह पर सवार हो सकती हैं। यह लाल रंग की चोली धारण करती हैं जिसे सर्प बांधे रहते हैं।

महाबलिपुरम में दुर्गा की पाषाण प्रतिमा तो देखते ही बनती है। दुर्गा पद्मासन पर आसीन हैं और विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित हैं। यहां के ही नराक-स्वामिन के मन्दिर में दुर्गा देवी के आठ हाथों में बाण, शूल, शक्ति, खड्ग, चन्द्रबिम्ब, खेटक, कपाल आदि आयुध धारण किए भैंसे के सिर पर खड़ी दिखाया गया है।

भारत के विभिन्न दुर्गा मन्दिरों में देवी को सिंहारूढ दिखाया गया है। वह प्रायः लाल रंग की साड़ी तथा विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित होती है। उनके सिर पर मुकुट तथा आठ हाथों में से सात में खड्ग, त्रिशूल, चक्र, कमल, धनुष, गदा और शंख होते हैं। उनका आठवां हाथ वरद मुद्रा में होता है। उनकी पूजा भारत में आदिकाल से श्रद्धा एवं विश्वास से होती आई है।

अगम हमें दुर्गा के नौ रूपों से परिचित कराते हैं। राव महोदय ने नौ दुर्गों के लक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। दुर्गा के नौ रूप हैं—

नीलकण्ठि दुर्गा—नीलकण्ठि दुर्गा चतुर्भुजी हैं। उनके तीन हाथों में त्रिशूल, खेटक और जलपात्र रहता है और चौथा हाथ वरद मुद्रा में होता है। वह धन और वैभव प्रदान करने वाली हैं।

क्षेमण्डकरि दुर्गा—क्षेमण्डकरि दुर्गा की उपासना से स्वास्थ्य-लाभ होता है। उनका एक हाथ वरद मुद्रा में और तीन में त्रिशूल, पद्म और जलपात्र रहता है।

हरसिद्धि दुर्गा—हरसिद्धि दुर्गा के हाथों में डमरू, कमण्डल, खड्ग तथा जलपात्र रहता है। वह मनवांछित फल देने वाली हैं।

रुद्राश दुर्गा—रुद्राश दुर्गा दो नेत्र वाली, श्याम वर्णा, लाल वस्त्रों से आभूषित, स्वर्ण आभूषणों से अलकृत तथा सिर पर करण्ड मुकुट धारण करती हैं। उनके हाथों में शूल, खड्ग, शंख और चक्र होता है। उनका वाहन सिंह है और उनके दोनों ओर सूर्य और चन्द्र दर्शाये जाते हैं।

वन दुर्गा—वन दुर्गा अष्ट भुजा वाली हैं। उनके सात हाथों में शंख, चक्र, खड्ग, खेटक, बाण, धनुष और शूल रहता है और आठवां हाथ तर्जनी मुद्रा में दिखाया जाता है। उनका वर्ण हरा होता है।

अग्नि दुर्गा—अग्नि दुर्गा की आठ भुजाओं में से छह में चक्र, खड्ग, खेटक, बाण, पाश और अंकुश रहते हैं, और दो हाथ वरद और तर्जनी मुद्रा में रहते हैं। सिंहासनारूढ़ दुर्गा के दाईं ओर और बाईं ओर अप्सराएं खड्ग और ढाल लेकर खड़ी होती हैं। दुर्गा के मुकुट पर अर्धचन्द्र रहता है। उन्हें त्रिनेत्र देवी कहा गया है।

जय दुर्गा—जय दुर्गा के त्रिनेत्र हैं और उनकी चार भुजाओं में शंख, चक्र, खड्ग और त्रिशूल हैं। उनका वर्ण बिल्कुल काला है और उनके मुकुट पर अर्ध-चन्द्र है। उनका वाहन सिंह है। जयदुर्गा की पूजा करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

विन्ध्यावासिनी दुर्गा—दामिनी-सा शरीर, त्रिनेत्री और चार भुजा वाली विन्ध्यवासिनी दुर्गा की छवि मनमोहक है। वह स्वर्ण कमल पर आसीन हैं। देवी अपनी दो भुजाओ मे शख और चक्र धारण करती हैं। उनके दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे हैं। देवी के मुकुट पर अर्धचन्द्र शोभायमान होता है। वह कुन्डल, हार तथा अन्य आभूषणों से सुसज्जित हैं। उनका वाहन सिंह उनके पास खड़ा है। देवतागण उनकी पूजा कर रहे है।

रिपुमारि दुर्गा—रिपुमारि दुर्गा का वर्ण लाल है तथा रूप रौद्र। उनके हाथ में त्रिशूल तथा दूसरा हाथ तर्जनी मुद्रा में है। वह भक्तो की रक्षा करती हैं और रिपु का विनाश करती है।

नौ दुर्गा की पूजा हर वर्ष नौ दिनो तक उपवास रखकर की जाती है। उनकी भक्ति में जागरण किए जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि नौ दुर्गा की पूजा से विभिन्न फल प्राप्त होते है और शारीरिक एव आत्मिक शक्ति की वृद्धि होती है।

महिषासुरमर्दनी

देवी का यह स्वरूप उनके रौद्र रूप को हमारे सम्मुख रखता है। उन्हे महिषासुर का विनाश करते हुए दिखाया जाता है। वह अपने हाथों मे विभिन्न आयुध धारण करती हैं। उनका वाहन सिंह क्रोधित हो राक्षस का तन विदार रहा है। भैंसे की कटी गर्दन से असुर का उपरोक्त धड़ निकलता हुआ दिखाया जाता है जिस पर देवी त्रिशूल से प्रहार कर रही हैं। असुर के शरीर से रक्त बह रहा है।

शिल्प रत्न के अनुसार महिषासुरमर्दनी के दस हाथ होने चाहिए। उनके त्रिनेत्र, सिर पर जटामुकुट और इस पर चन्द्रकला दिखाई जानी चाहिए। उनका वर्ण अलसी के फूल की तरह होना चाहिए। उभरे हुए स्तन, पतली कमर तथा शरीर मे त्रिभंग होना चाहिए। देवी के दाहिने हाथो मे त्रिशूल, खड्ग, शक्तायुध, चक्र, खिंचा हुआ धनुष तथा बाएं हाथों मे पाश, अंकुश, खेटक, परशु और घंटा होना चाहिए। उनके पैर के नीचे भैंसा पडा होना चाहिए जिसका सिर कटा हुआ होना चाहिए। भैंसे की नाक से खून बहता हुआ दिखाया जाना चाहिए। भैंसे की गर्दन से राक्षस को निकलते हुए दिखाया जाना चाहिए जिसे देवी के नागफास से बंधा होना चाहिए। असुर के हाथो मे ढाल और तलवार होनी चाहिए। असुर की गर्दन मे देवी को त्रिशूल भोंकते हुए प्रदर्शित किया जाना

चाहिए। असुर से निकलती हुई रक्त धाराएं दिखाई जानी चाहिए। देवी का दाहिना पैर सिंह की पीठ पर रखा होना चाहिए। उनका बायां पैर महिषासुर के शरीर को स्पर्श करता हुआ प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार देवी का वर्ण स्वर्ण के समान कान्तिमय होना चाहिए। देवी को क्रोधावेश में सिंह पर सवार दिखाया जाना चाहिए। उनके बीस हाथों में से दाहिने हाथों में शूल, खड्ग, शंख, चक्र, बाण, शक्ति, वज्र, डमरू और छत्र होना चाहिए तथा एक हाथ अभय मुद्रा में होना चाहिए। उनके बाएं हाथों में नागपाश, खेटक, परशु, अकुश, धनुष, घंटा, ध्वज, गदा, दर्पण और मुग्दर होना चाहिए। कटे हुए भैंसे के सिर से असुर को निकलते हुए दिखाया जाना चाहिए। असुर के नेत्र, केश, तथा भौंहें लाल हैं और वह खून उगल रहा है। देवी का वाहन सिंह राक्षस के बदन को विदार रहा है। देवी त्रिशूल से असुर की गर्दन भेद रही हैं। असुर को उन्होंने नागपाश में बांध रखा है। असुर ढाल और तलवार लिए हुए है।

महिषासुरमर्दनी की अनेक प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। यद्यपि इन मूर्तियों में ग्रंथों में वर्णित सभी लक्षणों का समावेश न हो सका है किन्तु उनका अधिकतर अनुसरण किया गया है। एलोरा में प्राप्त महिषासुरमर्दनी की प्रतिमा में देवी की दस भुजाएं हैं। वह त्रिशूल से महिष के स्कन्ध को छेद रही हैं। उनके हाथों में शूल, खड्ग, शंख, चक्र, बाण, शक्ति इत्यादि शस्त्र हैं। देवि क्रोधित हो असुर पर वार कर रही हैं। भैंसे के कटे धड़ से महिषासुर निकलता दिखाया गया है। देवी का वाहन सिंह राक्षस का बदन विदार रहा है। भीटा में प्राप्त प्रतिमा में भी देवी महिषासुर से युद्ध करती दिखाई गई हैं। उनकी दो भुजाएं हैं। छम्ब से प्राप्त चतुर्भुजी देवी प्रतिमा दैत्य के सिर पर सवार हैं। वह असुर पर त्रिशूल से प्रहार कर रही हैं। उदयगिरी से प्राप्त देवी प्रतिमा दस भुजी है। महाबलिपुरम तथा एलोरा से प्राप्त देवी प्रतिमाएं अपनी छवि में सम्पूर्ण हैं। यहां उनका वाहन सिंह भी उपस्थित है। बादामी से प्राप्त महिषासुरमर्दनी की प्रतिमा में देवी त्रिशूल से दैत्य के गले का छेदन कर रही हैं और अपने एक हाथ से भैंसे की पूछ पकड़े हुए हैं।

भारतीय मन्दिरों में आज भी देवी के इस रूप की प्रतिमाओं की स्थापना की जाती है। महिषासुरमर्दनी का देवि स्वरूप हमें स्त्री में निहित अनन्य दैविक शक्ति से परिचित कराता है। यदि देवी अपने लक्ष्मी स्वरूप में माया है, सरस्वती स्वरूप में विद्या की देवी, तो अपने दुर्गा या महिषासुरमर्दनी स्वरूप में अनन्त शक्ति पुंज।

सप्तमातृका

सप्तमातृका की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में बड़े रोचक वृत्तान्त मिलते हैं। अन्धकासुर ब्रह्मा की घोर तपस्या कर उनसे वरदान प्राप्त कर बड़ा शक्तिशाली असुर राजा बन गया। उसने देवों को त्रासित करना प्रारम्भ कर दिया। देवगण शिव की शरण में गए और अपनी व्यथा का कारण बताया। अन्धकासुर पार्वती के हरण करने की कामना ले कैलाश पर्वत आ पहुंचा। असुर की धृष्टता से क्रोधित हो शिव उससे संग्राम करने के लिए उठ खड़े हुए। शिव ने अपनी गण सेना अपने साथ ले ली। देवों ने भी इस संग्राम में शिव की सहायता की। शिव ने अपने बाणों से अन्धकासुर को घायल कर दिया। असुर की हर रक्त बूंद से अन्धकासुर उत्पन्न हो गए। शिव ने अन्धकासुर के शरीर में त्रिशूल भेद दिया और विष्णु ने चक्रयुद्ध कर अन्य अन्धकासुरों का वध कर दिया। अन्धकासुर के रक्त को पृथ्वी तक न पहुंचने देने के लिए शिव ने ज्योति की रचना की जो कि योगेश्वरी के मुख से प्रज्वलित हुई। इस कार्य में सहायता देने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, स्कन्द, इन्द्र, यम आदि देवों ने ब्रह्माणी, महेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा को भेजा। वे अपने करों में अपने देवों के समरूप आयुध धारण करती हैं और उन्हीं वाहनों पर सवारी करती हैं। उनकी ध्वज-पताका भी वही है जो उनके देवों की है।

देव स्त्रियों ने सदा ही देवासुर संग्रामों में देवताओं का साथ दिया। प्राचीन ग्रंथों में ऐसे उद्धरणों की कमी नहीं है। वे युद्ध विद्या में पारगत रही हैं। एक स्वाभाविक प्रश्न हमारे सम्मुख उभरता है कि क्या असुर-स्त्रियां भी देव स्त्रियों की ही भांति रण कला में दक्ष थीं और देवासुर संग्रामों में असुरों का साथ देती थीं? प्राचीन भारतीय ग्रन्थ तो देवताओं द्वारा असुरों का विनाश कर धरा का भार हल्का करने के विवरणों को हमारे सम्मुख रखते हैं, इसलिए उनका राक्षस या राक्षस-स्त्रियों के पराक्रम के विषय में कुछ कहना स्वाभाविक ही नहीं है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में भारतीय स्त्रियां विभिन्न विधाओं और कलाओं में पारंगत थीं। वे रण विद्या से भी अछूती न थीं।

विष्णु पुराण योगेश्वरी को भी मातृकाओं की सूची में सम्मिलित कर अष्ट मातृकाओं की बात करता है। वराह पुराण के अनुसार मातृकाएं मनुष्य के आठ मानसिक उद्वेगों की परिचायक हैं। योगेश्वरी—काम, महेश्वरी—क्रोध, वैष्णवी—लोभ, ब्रह्माणी—मद, कौमारी—मोह, इन्द्राणी—मत्सर्य या दोषारोपण, यामी या चामुन्डा—पैशुन्य और वराही—असूय या प्रतिस्पर्धा का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह पुराण अन्धकासुर एवं सप्तमातृकाओं की अज्ञान-ज्ञान की दार्शनिक व्याख्या को उपमात्मक ढंग से हमारे सम्मुख रखता है। अन्धकासुर अज्ञान का प्रतीक है। ज्ञान की आत्मा शिव हैं। शिव अज्ञान से युद्ध करते हैं।

अज्ञान पर ज्ञान का जितना प्रहार होता है, अज्ञान उतना ही बढ़ता है और यही तो है अन्धकासुर का गुणान्वित होना। जब तक काम, क्रोध, मद, लोभ को ज्ञान से नियन्त्रित नहीं किया जाता है, तब तक अज्ञान रूपी तम का विनाश नहीं होता। वराह पुराण की यह व्याख्या कितनी तर्कसंगत है।

अगम् मातृकाओ के स्वरूप का रोचक विवेचन करते हैं। ब्राह्मी की मूर्ति ब्रह्मा की तरह, महेश्वरी की महेश्वर की तरह तथा वैष्णवी की विष्णु की तरह बनाई जानी चाहिए। वराही का कद छोटा तथा मुख पर क्रोध दर्शाया जाना चाहिए। उनका आयुध हल है। चामुण्डा को वीभत्स रूप में दिखाया जाना चाहिए। चामुण्डा के केश बिखरे हुए, काला वर्ण और चार हाथ होने चाहिए जिनमे से एक मे त्रिशूल और दूसरे मे कपाल होना चाहिए। इन्द्राणी को इन्द्र की तरह वैभवशाली दर्शाया जाना चाहिए। सप्त मातृकाएं बैठी हुई अवस्था मे और उनके दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे होने चाहिए। उनके अन्य दो हाथों मे उनके देवो के समरूप आयुध या वस्तुएं होनी चाहिए।

राव महोदय ने सप्त मातृकाओ के रूप का विस्तृत विवरण दिया है। उनके प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षण इस प्रकार हैं :—

वैष्णवी—विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार वैष्णवी का वर्ण श्याम और षष्टभुजी होना चाहिए। उनके चार हाथो मे गदा, पद्म, शंख और चक्र हैं और दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे रहते हैं। उन्हें अपने वाहन गरुड़ पर आसीन होना चाहिए।

महेश्वरी—विष्णु धर्मोत्तर के अनुसार देवी महेश्वरी वृष पर आरूढ होती हैं और उनके पांच मुख एवं त्रिनेत्र हैं। देवी षष्टभुजी है जिनमे वह सूत्र, डमरू, शूल एवं घण्टा धारण करती हैं। उनके दो हाथ वरद तथा अभय मुद्रा मे रहते हैं। उनका वर्ण श्वेत है तथा शिव की ही तरह जटाजूट से सुशोभित होती हैं।

ब्राह्मी—विष्णु धर्मोत्तर के अनुमार ब्राह्मी के चार मुख तथा छः भुजा होनी चाहिए। उनके करो मे स्त्रुव, सूत्र, पुस्तक तथा कुण्डी रहती है और उनकी दो भुजाए वरद तथा अभय मुद्रा मे रहती हैं। उनका वर्ण पीला है। वह हंस पर सवार होती हैं। उनकी काया विभिन्न आभूषणों से सुमज्जित होती है। उनका रूप सरस्वती से साम्यता रखता है।

चामुण्डा—चामुण्डा का रूप इतना भयानक है कि देखते ही डर लगता है। उनका वर्ण रक्त के समान, वीभत्स मुख, सर्पों के आभूषण सभी तो उन्हें यम की सहभागिनी होने का आभास दिलाते हैं।

वराही—देवी वराही का वराह की तरह मुख, विशाल उदर एवं कृष्ण वर्ण है। वह अपने हाथो में दण्ड, खड्ग, खेट, पाश धारण करती हैं। उनके दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे रहते हैं।

इन्द्राणी—इन्द्राणी इन्द्र की तरह सहस्र नेत्र वाली हैं। वह हाथी पर सवार होती हैं। उनके दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे दिखाये जाते हैं। अपने अन्य हाथो में यह सूत्र, वज्र, कलश एवं पात्र धारण करती हैं।

कौमारी—त्रिनेत्री, रक्त के समान वस्त्रो से सुशोभित होने वाली कौमारी देवी अपने दो हाथो मे शक्ति और कुक्कुट धारण करती है। उनके दो हाथ अन्य देवियों की तरह अभय मुद्रा तथा वरद मुद्रा मे रहते हैं। उनका निवास गूलर के वृक्ष के नीचे है। उनका ध्वज मयूर ध्वज है।

कला मे सप्त मातृकाओ का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है। लक्कण्डि के काशी विश्वेश्वर मन्दिर मे सप्त मातृकाओं की सुन्दर प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं। यहा उन्हें चतुर्भुजी तथा अपने देवो के समान लक्षण तथा वाहन वाली दिखाया गया है। सप्त मातृका की सुन्दर प्रतिमाए एलोरा मे देखने को मिलती हैं। सबसे सुन्दर प्रतिमाए रावण का खाली मे हैं। यहा केवल महेश्वरी को छोडकर अन्य सभी मातृकाओ के हाथ मे बालक हैं। सप्त मातृकाए चतुर्भुजी हैं तथा हर देवी के गवाक्ष मे उनका वाहन दिखाया गया है। रामेश्वर एव कैलाश गुफा मन्दिरों मे सप्त मातृका प्रतिमा समूह बडे भव्य एवं आकर्षक हैं। राव महोदय ने वेलूर तथा कुम्भकोणम मे प्राप्त सप्त मातृकाओं की प्रतिमाओ का उल्लेख किया है।

अध्याय : सात

गणेश

हिन्दू पूजा का शुभारम्भ गणेश पूजा से होता है। देवों के देव विघ्नराज सारे विघ्नों का हरण करते हैं। गणेश के व्यक्तित्व का आभास उनके नामो से ही होता है। उन्हे गणपति, एकदन्त, हेरम्बा, लम्बोदर, गजानन, गुहागराज इत्यादि नामो से जाना जाता है। शिव और पार्वती के सेवक के रूप मे जन्मे गणेश कालान्तर मे अपने विशिष्ट गुणो के कारण इतने प्रसिद्ध हो गए कि वह प्रमुख देव के रूप मे समाज के सम्मुख उभरकर आए।

लिंग पुराण मे गणेश को विघ्नेश्वर कहा गया है। असुर एवं देव किसी की भी तपस्या से शिव प्रसन्न होकर उसे वरदान दे देते हैं। असुर घनघोर तपस्या कर शिव से वरदान प्राप्त कर लेते और देवताओ से शक्तिशाली बन जाते। अपने पराक्रम से देवताओ को आतंकित कर देते। देवों ने शिव से प्रार्थना की कि वह राक्षसों को वरदान देकर शक्तिशाली न बनाए और उनसे उनकी रक्षा करें। शिव की अनुकम्पा से पार्वती ने विघ्नेश्वर को जन्म दिया जिन्होंने असुरों का संहार कर देवताओ के दुखों का हरण किया। देवताओ ने उन्हें उनके पराक्रम, बुद्धिमत्ता एवं विशिष्ट लक्षणों के कारण देवाधिदेव स्वीकार कर लिया।

शिवपुराण गणेश की उत्पत्ति का बड़ा रोचक वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। भगवान शिव के अनन्य भक्त थे जो शिव के अतिरिक्त पार्वती की भी सेवा करते थे। पार्वती का कोई व्यक्तिगत सेवक नही था। एक दिन पार्वती स्नान कर रही थी। शिव अनजाने मे अन्तरकक्ष मे प्रवेश कर गए। इस घटना के कारण पार्वती के मन मे अपना निजी सेवक होने की इच्छा प्रबल हो उठी और उन्होने अपने तन से थोड़ी रज लेकर गणेश की रचना कर डाली और उन्हें द्वारपाल का कार्यभार सौंप दिया। एक बार शिव पार्वती से मिलने गए तो द्वारपाल गणेश ने उन्हें अन्तरकक्ष मे प्रवेश नही करने दिया। शिव ने स्वयं को एक द्वारपाल

द्वारा अपमानित महसूस किया और भूत-प्रेतों को गणेश को समाप्त करने का आदेश दे दिया। गणेश के साथ शिव-गणो का घमासान युद्ध हुआ। शिव-गण पराजित हो गए। शिव के आदेश पर विष्णु एवं सुब्रह्मण्यम ने गणेश से युद्ध किया, किन्तु वे भी गणेश को पराजित न कर सके। शिव ने क्रुद्ध होकर गणेश का सिर काट दिया। पार्वती ने क्रोधित होकर अपनी दैविक शक्ति से उन देवताओ को त्रासित कर दिया जिन्होने गणेश के साथ युद्ध किया था। नारद ने देवों और पार्वती के मध्य समझौता करवाया और गणेश के धड पर हाथी का सिर रखकर उन्हें जीवित कर दिया। जिस हाथी का सिर गणेश के धड़ पर लगाया गया उसके एक ही दात था, जिसके कारण गणेश एकदन्त कहलाए। गणेश ने शिव से अनजाने मे उनका अनादर करने के लिए क्षमा याचना की। शिव ने गणेश की अद्‌भुत सामरिक कुशलता एव बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर उन्हें गणों का सेनापति बना दिया जिसके कारण गणेश गणपति कहलाए।

गणेश की उत्पत्ति से सम्बन्धित वृत्तान्त स्कन्द, मत्स्य पुराण एवं सुप्रभेदागम मे मिलते हैं। उनका सर्वप्रथम उल्लेख एत्रेय ब्राह्मण मे आया है जहा उन्हें ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति से पहचाना गया है।

रूपमण्डन हमें गणेश के प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धित लक्षणों से परिचित कराता है। ग्रन्थ के अनुसार विघ्नेश्वर को खडा हुआ या बैठा हुआ दिखाया जा सकता है। वह पद्मासन, चूहे या कभी-कभी शेर पर बैठे दिखाये जा सकते हैं। वे द्विभंग, त्रिभग या समंग हो सकते हैं। बैठी हुई अवस्था मे नियमानुसार उनका बाया पैर मुडा होना चाहिए और आसन पर रखा होना चाहिए। दाहिना पैर बाईं जांघ पर रखा होना चाहिए। गणेश की मूर्तियो मे उनका उदर बड़ा दिखाया जाता है, इस कारण उन्हें पलथी मारकर बैठे हुए नही दिखाया जा सकता। उनका दाहिना पैर मुडा हुआ आसन पर आराम करते हुए दिखाया जाता है। उनकी सूड बाईं या दाहिनी ओर घूमी हुई दिखाई जा सकती है। यह अधिकतर बाईं ओर घूमी हुई ही दिखाई जाती है। विघ्नेश्वर को दो नेत्र वाला प्रदर्शित किया जाता है जबकि अगमों मे उनके तीन नेत्रों का भी उल्लेख है। गणेश की मूर्ति की चार, छः, आठ, दस या सोलह भुजाएं भी हो सकती हैं। प्रायः उनकी चार भुजाएं ही दिखाई जाती हैं। लम्बोदर का पेट बड़ा होना चाहिए। उनके सीने पर सर्प यज्ञोपवीत की तरह पडा होना चाहिए। दूसरा सर्प उनकी कमर पर पेटी की तरह शोभायमान हो सकता है।

गणेश मन्दिर मे अन्य देवी-देवताओ की स्थिति का भी उल्लेख मिलता है। गणेश की प्रधान मूर्ति के बाईं ओर गजकर्ण, दाहिनी ओर सिद्धि, उत्तर की ओर गौरी, पूर्व की ओर बुद्धि, आग्नेय दिशा मे बालचन्द्र, दक्षिण मे सरस्वती, पश्चिम में कुबेर और पीछे की ओर धूमक की मूर्ति बनानी चाहिए। मन्दिर के चार

द्वारो पर द्वारपालों की स्थिति इस प्रकार होनी चाहिए—पूर्वी द्वार पर अविघ्न और विघ्नराज, दक्षिण मे सुवक्त्र और बलवान, पश्चिम मे गजकर्ण और गोकर्ण और उत्तर मे सुमौम्य और शुभदायक की प्रतिमाएं होनी चाहिए। इन प्रतिमाओं को वामनाकृति मे दर्शाया जाना चाहिए। उनके चार कर होने चाहिए। अविघ्न और विघ्नराज के करो मे दण्ड, परशु और पद्म होना चाहिए। उनका एक हाथ तर्जनी मुद्रा में होना चाहिए। सुवक्त्र और बलवान के तीन हाथों में दण्ड, खड्ग और खेटक होना चाहिए और चौथा हाथ तर्जनी मुद्रा मे। गजकर्ण और गोकर्ण का एक हाथ तर्जनी मुद्रा मे तथा शेष तीन हाथों मे दण्ड, धनुष और बाण दिखाया जाना चाहिए। सुमौम्य और शुभदायक को दण्ड, पद्म और अंकुश धारण करना चाहिए। उनका चौथा हाथ अन्य द्वारपालों की ही तरह तर्जनी मुद्रा मे होना चाहिए।

गणेश की प्रतिमाओ को मुख्यतः दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

क. केवल गणपति
ख. शक्ति गणपति

केवल गणपति

केवल गणपति को मुख्यतः छः प्रकारो मे विभक्त किया जा सकता है—बाल गणपति, तरुण गणपति, भक्ति विघ्नेश्वर, वीर विघ्नेश, प्रसन्न गणपति, नृत्य गणपति।

इन छ. प्रकारो के अतिरिक्त राव महोदय ने कई अन्य प्रकारों, जिनमे उन्मत्त उच्छिष्ट गणपति, विघ्नराज गणपति, भुवनेश गणपति, हरिद्रागणपति, भालचन्द्र गणपति, सूर्पकर्ण, एकदन्त गणपति इत्यादि का भी उल्लेख किया है जो गणेश के विशिष्ट व्यक्तित्व के ही परिचायक हैं।

बाल गणपति—बाल गणपति का प्रदर्शन बालक रूप मे किया जाना चाहिए। उनका वर्ण उभरे हुए सूर्य के समान होना चाहिए। बाल गणपति के चार हाथो में आम, केला, जैकफल, गन्ना और सूड़ मे जगली सेव होना चाहिए।

तरुण गणपति—तरुण गणपति को तरुणावस्था मे दिखाया जाता है। इनके छः हाथ हैं जिनमे वह विभिन्न प्रकार के फल तथा पाश और अंकुश धारण करते हैं।

भक्ति विघ्नेश्वर—भक्ति विघ्नेश्वर का वर्ण श्वेत होना चाहिए। उनके चार हाथो में नारियल, आम, गन्ना तथा मीठे व्यंजन का पात्र दिखाया जाना चाहिए।

वीर विघ्नेश—वीर विघ्नेश को योद्धा के रूप मे प्रदर्शित किया जाता है। उनका वर्ण रक्तमय है। वह अपने सोलह हाथो मे वेताल, प्रेत, शक्ति, धनुष, बाण, तलवार, ढाल, मुग्दर, हथौड़ा, गदा, अंकुश, पाश, शूल, कुण्ड, परशु और ध्वज लिए हुए हैं। उनका यह रूप उनके गणाधीश होने का बोध कराता है।

प्रसन्न गणपति—कुछ ग्रन्थों के अनुसार प्रसन्न गणपति की प्रतिमा अभंग तथा कुछ के अनुसार समभंग होनी चाहिए। उन्हें पद्मासन पर खड़े होना चाहिए और सूर्य की लालिमा की तरह रंग के वस्त्रों से सुसज्जित होना चाहिए। उनके दो हाथों मे पाश तथा अंकुश तथा दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे रहते हैं। अभी तक प्राप्त मूर्तियों मे प्रसन्न गणपति के हाथ वरद और अभय मुद्रा मे नही हैं। उनमे वह दन्त और मोदक लिए हुए हैं।

नृत्य गणपति—नृत्य गणपति का वर्ण स्वर्णमय होना चाहिए। गणेश को नृत्य करते हुए दिखाया गया है। उनके आठ हाथ हैं जिनमे से वह अपने सात हाथो मे पाश, अंकुश, केक, कुठार, दन्त, वल्य (लोहे की गडारी) अंगुलिय तथा अन्य हाथ स्वछन्द लटकते हुए नृत्य की गति से तालमेल रखते हुए प्रदर्शित किया जाना चाहिए। उनका बायां पैर थोड़ा-सा मुड़ा हुआ पद्मासन पर रखा है तथा दाहिना पैर भी मुड़ा हुआ हवा मे प्रदर्शित किया गया है। मूर्तियो मे अधिकतर चार हाथ ही देखने को मिलते हैं।

राव महोदय ने गणेश की हेरम्ब मूर्ति का भी उल्लेख किया है। हेरम्ब के पांच हस्ति सिर जिनमे से चार चार दिशाओ की ओर और एक इनके ऊपर आकाश की तरफ देखते हुए दिखाया जाना चाहिए। उन्हें सिंह पर आसीन होना चाहिए और उनका वर्ण स्वर्ण के समान होना चाहिए। उनके हाथो मे पाश, दन्त, अक्षमाला, परशु, मुग्दर, मोदक और अन्य दो हाथ वरद तथा अभय मुद्रा मे होना चाहिए।

शक्ति गणपति

शक्ति गणपति के निम्नलिखित प्रकार है :

लक्ष्मी गणपति, उच्छिष्ट गणपति, महागणपति, ऊर्ध्व गणपति, पिंगल गणपति।

लक्ष्मी गणपति—लक्ष्मी गणपति का वर्ण श्वेत तथा उनके आठ हाथो मे तोता, कमल, स्वर्ण जलपात्र, अंकुश, पाश, कल्पलता, बाज इत्यादि होने चाहिए। उनका एक हाथ लक्ष्मी को आलिंगन मे लेते हुए तथा दूसरे हाथ मे कमल का फूल होना चाहिए।

महागणपति—महागणपति का वर्ण रक्त के समान लाल होना चाहिए।

उनके दस करों मे से अष्ट करों मे कमल पुष्प, रत्नजड़ित जलपात्र, गदा, टूटा हुआ दांत, गन्ना, धान की बाली, पाश इत्यादि होना चाहिए। उनकी गोदी मे शक्ति को बैठी हुई दिखाया जाना चाहिए। महागणपति का एक हाथ देवि को आलिंगन मे लेते हुए तथा दूसरे हाथ में कमल होना चाहिए।

ऊर्ध्व गणपति—ऊर्ध्व गणपति का वर्ण स्वर्ण मानिन्द होना चाहिए। उनके पाच हाथों मे कल्हर का फूल, धान की बाली, गन्ने का धनुष बाण और दांत होना चाहिए। उनका पांचवां हाथ शक्ति को आलिंगन मे लेते हुए दिखाया जाना चाहिए।

पिंगल गणपति—पिंगल गणपति अपने छः करों मे आम, फूलों का गुच्छा, गन्ना, मोदक, परशु इत्यादि धारण करते हैं। लक्ष्मी की प्रतिमा को उनके पास ही दिखाया जाना चाहिए।

उच्छिष्ट गणपति—उच्छिष्ट गणपति और शक्ति प्रायः नग्न होते हैं और दोनों एक दूसरे के गुप्त भागों को छूते हुए प्रदर्शित किए जाते हैं। गणेश के हाथों मे परशु, पाश और मोदक होते हैं। उनका चौथा हाथ देवि को आलिंगन में लेते हुए दिखाया जाता है।

गणेश की कई प्रकार की प्रतिमाएं भारत और विदेशों में प्राप्त हुई हैं जो उनके प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षणों पर प्रकाश डालती हैं। वे प्रतिमाएं कभी-कभी पौराणिक ग्रन्थों मे प्राप्त गणेश प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षणों से पूर्णतः साम्यता नहीं रखती जिसके कई कारण हो सकते हैं। यद्यपि शिल्पियों ने ग्रन्थों में वर्णित लक्षणों को पूर्णत. देवस्वरूप मे अपनाने का प्रयास किया है, किन्तु उन्हें देश काल का प्रभाव, प्रतिमा या मन्दिर निर्मित कराने वालों की रुचि एवं श्रद्धा का भी ध्यान रखना था। जिस देश, स्थान पर उन प्रतिमाओं का निर्माण किया गया, वहां का तत्कालीन प्रभाव उन पर पड़ना भी स्वाभाविक है। गणेश की कुछ मूर्तियों मे उन्हें बुद्ध की तरह वज्रासन मे प्रदर्शित किया गया है। इन प्रतिमाओं में गणेश का स्वरूप बहुत कुछ बुद्ध प्रतिमाओं का हाव-भाव लिए हुए है।

गणेश की प्रतिमाओं का क्रमबद्ध अध्ययन हमें गणेश प्रतिमा विज्ञान समझने मे सहायता करता है। स्मिथ महोदय के अनुसार हुविष्क के एक सिक्के पर, जो कलकत्ता के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है, पुराने ब्राह्मी अक्षरों मे गणेश अंकित है। कुछ विद्वान स्मिथ महोदय के इस मत से सहमत नहीं हैं। कुमार स्वामी एवं डुब्रियल महोदय अमरावती में उद्भूत एक चित्र की गणेश प्रतिमा को प्रथम शताब्दी ई० का मानते हैं। वे इसे गणेश के मूल रूप में देखते हैं। गणेश की यह प्रतिमा लिंग भार से झुकी हुई एवं सर्प मेखला से सुसज्जित दिखाई

गई है। प्रतिमा मे गणेश का थोड़ा-सा ही शरीर दृष्टिगोचर होता है जो उनके शरीर के स्थूलत्व को उजागर करता है। प्रतिमा का सिर हाथी का है। गेत्ती महोदय के अनुसार इस तथ्य को सामने रखते हुए कि प्रतिमा के न तो सूड है और न दात, यह कहना कितना कठिन हो जाता है कि यह प्रतिमा गणेश का ही मूल प्रतिरूप है।

पर्करहर मे भी गणेश की प्रतिमा एक छोटे-से टेरीकोटा पर उद्भृत प्राप्त हुई है। गेत्ती महोदय इस प्रतिमा को भी पाचवी सदी से पूर्व का नही मानते। इन प्रतिमाओ मे गणेश नृत्य मुद्रा मे हैं और अपने हाथ मे मोदक लिए हुए हैं।

फतेहगढ़ से प्राप्त गणेश प्रतिमा गणेश की भारतीय प्रस्तर मूर्तियो मे शायद सर्वप्राचीन है। लगभग बीस इंच के प्रस्तर खण्ड पर यह मूर्ति उद्भृत की गई है। गणेश का सिर नंगा है तथा कान लम्बे हैं। भुजाओं की लम्बाई देखते हुए उनका नग्न धड़ बहुत छोटा है। पैर घुटनो तक आते-आते समाप्त हो जाते है। उनका दाहिना हाथ मुड़ा हुआ है जिसमे संभवतः वह दांत लिए हुए हैं। उनके बाए हाथ मे भोजन-पात्र है। यहा उनकी सूड़ शुरू होते ही बाए घूम जाती है और भोजन पात्र पर सीधी जा लटकती है। अधिकतर भारतीय मूर्तियो मे गणेश की सूड़ सीधी लटकती है और बाए को कुण्डली बनाते हुए भोजन पात्र तक पहुचती है।

भूभार से प्राप्त गणेश प्रतिमा मे उनकी सूड टूटी हुई है। गणेश का बायां हाथ भी सुरक्षित नही है। गोल घण्टियो की जजीर उनके सीने पर शोभायमान होती है। शरीर पर घण्टियो के आभूषण सुसज्जित हैं जिनमे ककण, नूपुर एव सिराभूषण उल्लेखनीय है। कुमार स्वामी इसे गणेश का यक्ष रूप मानते है। गेत्ती महोदय उनके इस मत से सहमत नही हैं। उनका कहना है कि गणेश का नाम यक्षो की किसी भी सूची मे देखने को नही मिलता और न पौराणिक मिथ ही उन्हें यक्षो से सम्बन्धित बताते है। इस प्रतिमा के निर्माण की तिथि पाचवी सदी मानी जाती है।

भूभार की दूसरी गणेश प्रतिमा शक्ति के साथ गणेश का प्रदर्शन करती है। कुमार स्वामी महोदय इसे छठी शताब्दी ई० का मानते हैं। यहा गणेश के बाए नितम्ब पर रत्नो से सुसज्जित शक्ति बैठी हुई है। देवि के माथे पर साधारण रत्नो की बन्धनी है। देवी का सिर स्वलकृत सिर वस्त्र से सुसज्जित है। गणेश के चार हाथ हैं। ऊपर के दाहिने हाथ मे कुल्हाड़ी, नीचे के दाहिने हाथ मे टूटा हुआ दात, ऊपर के बाए हाथ मे दण्ड तथा नीचे की बाईं भुजा शक्ति को आलिंगन मे लेते हुए दिखाई गई है। उनकी सूड बाईं ओर घूमती है तथा भोजन पात्र से, जिसे देवि अपने हाथ मे धारण करती हैं, केक उठा रही है।

चालुक्य राजाओं द्वारा पाचवीं से आठवी सदी ई० मे निर्मित कराई गई गणेश प्रतिमाएं या तो किसी प्रधान देव के सेवक के रूप मे या गौण देवता के रूप मे प्रदर्शित की गई हैं। सप्त मातृका के चालुक्य मन्दिरो में गणेश को सप्त मातृका के बिल्कुल बाएं कोने पर दिखाया गया है। लक्कन्डि के काशी विश्वेश्वर मन्दिर मे सप्तमातृका का सुन्दर प्रदर्शन है। गणेश की प्रतिमा भी यहा देखने को मिलती है। प्रतिमा के नीचे उनका वाहन चूहा दर्शाया गया है। चालुक्य राजाओ के शैल मन्दिरो मे गणेश को सदाशिव के सेवक के रूप मे प्रदर्शित किया गया है।

बादामी के शैव गुफा मन्दिर के बाहर स्तम्भ गैलरी के बाएं पत्थर में उद्भुत प्रतिमा मे शिव ताण्डव नृत्य करते हुए दिखाये गए हैं। इनके चरणो मे गणेश की छोटी-सी एक प्रतिमा है। गणेश नृत्य मुद्रा मे खड़े है। इनके सिर के पीछे आभामण्डल है। इनके चार हाथों मे से दो खण्डित हैं। मूल बाए हाथ मे भोजन पात्र तथा ऊपर का दाहिना हाथ नृत्य गति से तालमेल रखते हुए दिखाया गया है। विद्वानो के अनुसार बादामी के शैव गुफा मन्दिर छठी-सातवी ई० के मध्य ही बने होगे। एहोल के मन्दिरो मे भी गणेश अपनी सूड़ से भोजन पात्र से केक उठाते हुए दिखाये गए हैं।

एलोरा के गुफा मन्दिरो के सप्तमातृका समूह मे गणेश विद्यमान हैं। सबसे सुन्दर सप्तमातृका प्रतिमाएं रावण का खाली मे हैं। यहा केवल महेश्वरी को छोडकर अन्य मातृकाओं के हाथ में बालक है। सप्तमातृका चतुर्भुजी हैं। हर देवी के सिंहासन के गवाक्ष मे उनका वाहन दिखाया गया हैं: किन्तु यहा गणेश के सिंहासन गवाक्ष मे चूहे के स्थान पर भोजन पात्र दिखाया गया है। यहा गणेश के कान, सूड और पैर भूभार के घण्टी वाले गणेश से बहुत कुछ मिलते हैं।

रामेश्वर एवं कैलाश गुफा मन्दिरों मे सप्तमातृका प्रतिमा समूह मे गणेश की प्रतिमा बुरी तरह क्षत-विक्षत है। एलोरा के शैल मन्दिरो मे गणश को शिव के सेवक के रूप मे शिल्पित किया गया है। कैलाश गुफा मन्दिरो के लकेश्वर मन्दिर मे चतुर्भुजी पार्वती देवी अग्नि ज्वालाओं के मध्य खड़ी तपस्या करती दिखाई गई हैं। उनके ऊपरी बाएं हाथ मे गणेश की छोटी-सी प्रतिमा तथा ऊपरी दाहिने हाथ मे शिवलिंग है। गणेश का चित्रण जैन गुफा मन्दिरो मे भी देखने को मिलता है। गुजरात के चन्दोर जैन गुफा मन्दिर में उन्हें चतुर्भुजी दिखाया गया है। वह अपना पैर लम्बवत् किए बैठे हैं।

मध्य प्रदेश मे जबलपुर के नजदीक भेरघाट नामक स्थान पर गौरीशंकर मन्दिर के एक तरफ गणेश की उद्भुत प्रतिमा प्राप्त हुई है जो कि दसवी शताब्दी ई० की मानी जाती है। प्रतिमा चतुर्भुजी है और नृत्य मुद्रा मे है। गणेश के

नग्न शरीर पर मेखला और सिर पर स्वलकृत मुकुट है। उनकी उपरोक्त दो भुजाए सर्प को पकड़े हुए हैं। उनकी सूड साधारण बक्र के साथ बाए को घुमाव लेकर फिर दाई ओर घूम जाती है। गणेश अपनी सूड मे मोदक लिए हुए हैं।

गौरीशकर के मन्दिर के तोरणपथ मे चौसठ योगिनी विद्यमान हैं जो कि काफी क्षत-विक्षत हैं। इन्ही प्रतिमाओ मे एक गणेशिनी की प्रतिमा है। गणेशिनी की कटि सूक्ष्म तथा वक्ष उभरे हुए हैं जो कि शारीरिक सुन्दरता के परिचायक हैं। स्वलकृत साडी के अतिरिक्त उनका धड़ नग्न है। देवी विभिन्न रत्नाभूषणो से सुसज्जित हैं। उनका दाहिना पैर लम्बमान है। बायां पैर मुड़ कर आसन पर विराजमान है। उनके घुटने को एक हस्तिमुखी देव सहारा दे रहा है। देवी की चार भुजाए हैं जो कि कोहनी पर टूटी हुई हैं। भुजाए खण्डित अवस्था मे होने के कारण उनके हाथो की स्थिति के विषय मे कुछ कहना कठिन है। उनकी सूड टूटी हुई है। रत्नजटित बन्धनी उसके माथे पर सुसज्जित हो रही है। सिर पर मुकुट शोभायमान हो रहा है। गणेशिनी के कान लम्बे आवरक है। जिस तरह प्राचीन ग्रन्थो मे वैष्णवी का विष्णु की सहभागिनी के रूप मे उल्लेख और उनके विष्णु के लक्षणो के समरूप प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षण इस बात को स्पष्ट कर देते हैं कि लक्ष्मी शायद केवल विष्णु के वैभव एव ऐश्वर्य की परिचायक प्रतिमा हैं, शायद उसी तरह गणेशिनी का सुन्दर स्वरूप यह स्पष्ट कर देता है कि ऐश्वर्य की स्वरूप लक्ष्मी विद्यानिधि, वीर एव पराक्रमी देवाधिदेव गणेश के वैभव एव ऐश्वर्य की ही सूचक हैं और गणेशिनी उनकी सहभागिनी हैं।

नवग्रहो की प्रतिमाओ के साथ भी गणेश की प्रतिमा मिलती है। उन्हे यहा सूर्य के बाद बिल्कुल दाहिने किनारे पर देखा जा सकता है। कन्कण्डीघि के प्राचीन अवशेषो मे एक उद्भुत नवग्रह प्रस्तर खण्ड मिला है। यहा गणेश नवग्रहो के बिल्कुल दाहिने किनारे पर स्थित है। वह ऊचे जटामुकुट से सुशोभित है और अपने हाथो मे अक्षसूत्र तथा कुल्हाड़ी लिए हुए हैं। पश्चिम बगाल से प्राप्त नवग्रह प्रस्तर खण्डो मे भी गणेश की प्रतिमा का प्रदर्शन है।

जोधपुर के नजदीक घतियाल मे एक प्राचीन स्तम्भ पर हस्ति मुख वाले देव की प्रशसा मे अभिलेख अकित है जो कि 862 ई० का है। खम्भे के फलक पर एक दूसरे से सटी हुई चारो दिशाओ को इगित करती चार बैठी हुई प्रतिमाए हैं। शायद ये प्रतिमाएं चार दिग्गजो का आभास कराती हैं।

उनकोति पहाड़ियो (त्रिपुरा) की एक लम्बवत शिला मे उद्भुत गणेश की एक विशाल प्रतिमा मिली है जो कि ग्यारहवी-बारहवी सदी की मानी जाती है। गणेश की बैठी हुई चतुर्भुजी यह प्रतिमा तीन फुट ऊची है। इसके पीछे दो

हस्थि मुख वाले सेवक खड़े हैं जिनके चार-चार दात और चार या छः भुजाएं है। वे अपने हाथो मे ढोल, चक्र, घंटी इत्यादि लिए हुए हैं। उनके कानो को शंख या सीपियां सुसज्जित करती है। गणेश कमर तक नग्न हैं और सर्प पेटिका उन्हे नितम्ब तक धोती की तरह ढके हुए है। गणेश के स्थूल शरीर का प्रदर्शन देखते ही बनता है। उनके पास ही खड़ी दो प्रतिमाओ की व टि बड़ी सूक्ष्म है किन्तु ये प्रतिमाएं इतनी ध्वस्त है कि उन्हें पहचानना सम्भव नही।

हम्पी की गणेश की दो मूर्तियों मे एक बीस फुट तथा दूसरी तीस फुट की है। एलीफेन्टा की गुफाओ में भी गणेश की विशाल प्रतिमाएं देखी जा सकती हैं जहां वह अपने गणों के मध्य खड़े दिखाये गए हैं।

त्रिचनापल्ली और वल्लम में भी गणेश के उद्भृत चित्र हैं जो कि सातवी सदी के माने जाते हैं। त्रिचनापल्ली मे शिव के मन्दिर के नजदीक ही गणेश खड़े दिखाये गए हैं। वल्लम में वह करण्डमुकुट पहने सूंड मे मोदक लिए बैठे हैं। उनके नीचे के दाहिने हाथ मे सम्भवतः टूटा हुआ दांत है। उनके अन्य हाथो मे क्या है यह पहचानना शायद सम्भव नही। गणेश महाराज लीला मुद्रा मे बैठे हैं। उनका घुटना उठा हुआ है और बायां पैर मुड़ा हुआ सिंहासन पर रखा है।

पत्थर की लक्ष्मी गणपति मूर्ति विश्वनाथ स्वामिन मन्दिर, तेणकाशी मे प्राप्त हुई है जिसे 1446 ई० मे निर्मित माना जाता है। गणेश के करों मे चक्र, शख, शूल, परशु, दन्त और पाश हैं। उनके अन्य हाथो मे क्या है, यह कहना कठिन है।

राव महोदय ने कुम्भकोणम के नागेश्वर स्वामिन मन्दिर मे उच्छिष्ट गणपति की प्रतिमा का उल्लेख किया है। यहा पर गणेश के चार हाथो मे से तीन मे परशु, पाश एवं मोदक है तथा चौथे हाथ से वह देवी को आलिंगन मे ले रहे हैं। दोनों एक दूसरे के गुप्त भागो को छू रहे हैं।

हेरम्ब गणपति की ताम्र मूर्ति नागपट्टम के नीलायताक्षीयम्मन मन्दिर मे प्राप्त हुई है। गणपति शेर पर विराजमान हैं। उनके दो हाथ वरद और अभय मुद्रा मे हैं, जबकि अन्य आठ हाथो मे वह परशु, पाश, दन्त तथा अकुश इत्यादि लिए हुए हैं। उनके चार हाथो मे आयुध पहचाने नही जा सके। हेरम्ब गणपति के पांच सिर हैं जिनमे से एक ऊपर की ओर तथा अन्य चार चार दिशाओं की ओर स्थित हैं। राव महोदय इस प्रतिमा को पन्द्रहवीं शताब्दी ई० से पुराना नहीं मानते।

राव महोदय ने तंजौर जिले मे स्थित पट्टीश्वर मन्दिर मे प्राप्त प्रसन्न गणपति की प्रतिमा का उल्लेख किया है। यह प्रतिमा त्रिभंग है और पद्मासन पर खड़ी है। मूर्ति के चारों ओर प्रभावलि है। गणेश के चार हाथों मे अंकुश, पाश, मोदक व दन्त हैं। वह करण्डमुकुट धारण किए हुए हैं। राव महोदय इस

प्रतिमा के निर्माण की तिथि बारहवी या तेरहवी शताब्दी मानते हैं।

नृत्य गणपति की एक मूर्ति होयसलेश्वर मन्दिर मे प्राप्त हुई है। उनके सिर पर करण्डमुकुट तथा सिर के ऊपर छत्र सुशोभित है। गणेश के आठ हाथो मे से छ. मे परशु, पाश, मोदक, पात्र, दन्त, सर्प और पद्म है। उनका दाहिना हाथ दण्डहस्त मुद्रा मे और बाया हाथ विस्मय हस्त मुद्रा मे है। उनके आसन के नीचे उनका वाहन चूहा मोदक खाता हुआ प्रदर्शित है। गणेश के बाए-दाएं संगीतज्ञ ढोल बाजे बजा रहे हैं। यह प्रतिमा अपने मे सचमुच अनोखी है।

गणेश प्रतिमाओ का निर्माण उत्तर वैदिक काल से लेकर आज तक होता आ रहा है। गणपति आज हिन्दू विधि विधान पूजा के सर्वश्रेष्ठ देव हैं। उनकी प्रतिमाए उनके विभिन्न स्वरूपो मे समस्त भारतीय हिन्दू मन्दिरों मे देखने को मिलती है। कुछ प्रतिमाएं तो इतनी सुन्दर एवं विशाल हैं कि शिल्पियों की कला-दक्षता की पराकाष्ठा की तरफ ध्यानाकर्षित कर हमे आश्चर्यचकित कर देती हैं। गणेश की प्रतिमाएं विदेशो मे भी मिली हैं। इनका अन्य देशो मे प्रचलन गणेश के सार्वभौमिक महत्व की ओर इंगित करता है। चीन मे तुनहुआग मे एक गुफा दीवार पर बुद्ध प्रतिमाओ के अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, कामदेव आदि के साथ गणेश की प्रतिमा उद्भृत है। गणेश के सिर पर सिरवस्त्र तथा पाव मे शलवार है। मूर्ति के नीचे चीनी अक्षरो मे लिखा है—हाथियो के अमानुष राजा की मूर्ति।

जापान मे गणेश की तीन सिर और छः हाथ वाली प्रतिमाएं मिली हैं। मलय द्वीप मे भी गणेश की पत्थर एव धातु निर्मित मूर्तिया देखते ही बनती हैं। जावा की गणेश मूर्तियो मे गणेश पालथी मारकर बैठे है। उनके दोनो पैर भूमि पर सम पड़े हुए है। उनकी सूड सीधी जाकर सिरे पर घूमती है। कुछ मूर्तियों मे गणेश मुण्डमाला पहने हुए है। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने जालि के जमबरन स्थान की एक गणेश मूर्ति का उल्लेख किया है जिनके सिंहासन के चारो ओर अग्नि शिखाए प्रदर्शित की गई है। गणेश के दाहिने हाथ मे मशाल दिखाई गई है। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने जावा की एक गणेश मूर्ति का, जो कि अब हालैण्ड मे सुरक्षित है, भी उल्लेख किया है। गणेश अपने चार हाथो में टूटा दात, भोजन पात्र, परशु तथा माला लिए हुए हैं। उनकी सूड सीधी लटककर भोजन पात्र की ओर बाईं तरफ घूम जाती है। स्याम से प्राप्त गणेश मूर्तिया भी बड़ी आकर्षक हैं।

भारत के सुदूर पूर्व देशो मे प्राप्त गणेश की वे प्रतिमाए विशेषत: उल्लेखनीय है जिनमे गणेश मूर्तियो मे बुद्ध स्वरूप झलकता है। गणेश ध्यान मुद्रा मे वज्रासन पर आसीन हैं। उनका हाथ भूमि-स्पर्श मुद्रा मे है। यह बात स्पष्ट है कि भारत से पूर्व देशो मे बुद्ध धर्म के प्रचलन और बुद्ध की मूर्तियो के निर्माण के

साथ-साथ भारतीय शिल्पी हिन्दू धर्म के देवताओं को भुला नहीं पाए और उन्होंने उन्हें अन्य देशों में भी बुद्ध के समरूप बनाने का प्रयास किया। फिर हिन्दू धर्म के प्रवर्तक बुद्ध को भी हिन्दू धर्म से पूर्णत. पृथक् कहा मानते हैं। वे बुद्ध धर्म को हिन्दू धर्म के गहन सागर से ही प्रस्फुटित एक निर्मल धारा ही तो समझते हैं। बुद्ध को विष्णु के दशावतारों में एक माना गया है।

गणेश देव के कुछ विशिष्ट लक्षणों एवं गुणों का, जिनमें उनका सौम्य स्वरूप, सहनशीलता, बुद्धि, पौरुष, अदम्य साहस, सेवा-भाव इत्यादि उल्लेखनीय हैं, यदि हम स्वयं में समावेश कर लें, तो हम गणेश की सच्ची पूजा कर रहे हैं और उनके सच्चे सहज स्वरूप को विश्व के सम्मुख रख रहे हैं।

अध्याय : आठ

स्कन्द

देवासुर संग्राम निरंतर चलता रहा है। इसका कभी अन्त नहीं हुआ। दैविक एवं आसुरी प्रवृत्ति मानव में निरन्तर संघर्षमय रही और इस संघर्ष में सदा अन्ततः दैवी शक्ति की विजय हुई। असुरों का विनाश करने वाले और देवों पर अनुग्रह करने वाले विष्णु एवं शिव के विभिन्न रूपों से हम परिचित हो चुके हैं। शिव के परिवार से सम्बद्ध देवों में गणेश एवं स्कन्द का नाम उल्लेखनीय है। कार्तिकेय या स्कन्द ने अपने बाहुबल का प्रदर्शन कर राक्षसों का विनाश कर देवताओं के कष्ट का निवारण किया और हिन्दू देवताओं की शृंखला में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया।

कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति से जुड़ा हुआ पौराणिक मिथक इस प्रकार है। ताड़का नामक असुर के बढ़ते हुए प्रभाव एवं शोषण से देवता भयभीत हो गए। इस शक्तिशाली पराक्रमी राक्षस को इन्द्र तक पराजित न कर सके। देवतागण ने विचार किया कि पार्वती और शिव के विवाह से ही उनके दुःख का निवारण हो सकता है। उनकी मनोकामना पूर्ण हुई और शिव और पार्वती का विवाह हो गया। शिव-पार्वती के सम्भोग के समय शिव की धातु का कुछ अंश धरा पर गिर गया। इसे धरा सहन न कर सकी। धरा ने इसे अग्नि में डाल दिया। अग्नि ने इसे पवित्र कर गंगा को समर्पित कर दिया जहां कार्तिकेय का जन्म हुआ। कार्तिकेय ने ताड़का को नष्ट कर देवों के दुःख का हरण किया। कार्तिकेय की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अन्य मिथक भी हैं।

स्कन्द की पूजा प्राचीन समय से ही भारत में प्रचलित थी। उत्तर वैदिक-कालीन साहित्य में कार्तिकेय पूजा का उल्लेख है। सूत्र एवं वेदांग कार्तिकेय को एक महत्त्वशाली देव बनाते हैं और उन्हें कई नामों से सम्बोधित करते हैं। बोधायन धर्मसूत्र, छांदोग्य उपनिषद् एवं तैत्तरीय आरण्यक यह स्पष्ट करते हैं कि कार्तिकेय तत्कालीन भारत में पूज्य थे। पतंजलि स्कन्द प्रतिमाओं का उल्लेख करते हैं। वह स्कन्द को 'लौकिक देवता' कहते हैं। डॉ० भण्डारकर का कथन है

कि पतंजलि ने स्कन्द और विशाख दो नामों का उल्लेख किया है। इसलिए स्कन्द और विशाख को दो अलग-अलग देवता होना चाहिए। हुविष्क के दो में से एक सिक्के पर दो मानवाकृतियों के साथ 'स्कन्दो कुमारो विज़ागो' और दूसरे सिक्के पर एक मन्दिर में तीन मानवाकृतियों के साथ 'स्कन्दो कुमारो विज़ागो महासेनो' अंकित है। डॉ० उपेन्द्र कुमार ठाकुर का मत है कि स्कन्द और कुमार को एक ही देवता मानना चाहिए जबकि महासेन और विज़ागो को दो पृथक्-पृथक् देवता माना जा सकता है। वह यह भी कहते हैं कि बहुत समय तक इन देवों की स्वतन्त्र रूप में पूजा होती रही किन्तु द्वितीय शताब्दी के पश्चात् कार्तिकेय ही प्रचलित रह सके।

ग्रन्थों एवं सिक्कों पर स्कन्द के विभिन्न नाम अंकित मिलते हैं। जैसे— विशाख, ब्रह्मण्य, सुब्रह्मण्य, कुमार, महासेन इत्यादि। भगवद्गीता में स्कन्द को 'सेनानी नाम हम स्कन्दह' कहकर याद किया गया है। उन्हें देवों के सेनानी होने का बोध कराया गया है।

कुमारगुप्त प्रथम के बिलसद शिला स्तम्भ लेख में स्वामी महासेन का उल्लेख है। स्कन्दगुप्त के समय के बिहार शिला स्तम्भ अभिलेख में भद्राय्या के मन्दिर का उल्लेख है। अभिलेख पर अंकित 'भद्राय्याया भाति गृहम-स्कन्द प्रधानायर्मूवि मातरभिदक' स्कन्द को गणेश की भांति पार्वती का द्वारपाल होने की घोषणा करता है।

वृहत्संहिता में स्कन्द के प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षणों का वर्णन है। कार्तिकेय का वाहन मुर्गा है। वह शक्ति धारण करते हैं। उनके मुख से सुकुमारता झलकती है। विष्णु धर्मोत्तर में उन्हें षटमुखी देव कहा गया है जो शिखण्डक से सुसज्जित हैं। वह लाल रंग का वस्त्र धारण किए हुए हैं और मुर्गे पर सवार हैं। उनके दो हाथों में कुक्कुट और घंटा होना चाहिए और दो बाएं हाथों में वैजयन्ति पताका और शक्ति होनी चाहिए। इसी ग्रन्थ में उनके तीन अलग-अलग रूप स्कन्द, विशाख और गुह का वर्णन है। इन रूपों में स्कन्द षट-मुखी नहीं हैं और न ही वह मुर्गे पर सवार हैं। अंशुमदभेदागम षणमुख के चार प्रकार—दो, चार, छः एवं बारह करों वाले षणमुख का उल्लेख है।

प्राचीन काल से राजाओं ने अपने सिक्कों पर अपने पूज्य इष्टदेव का अंकन कराया है। सिक्कों पर हम शिव, कार्तिकेय, विष्णु इत्यादि देवों का अंकन पाते हैं। उज्जैन के सिक्के शिव और स्कन्द के घनिष्ठ सम्बन्धों पर तीसरी या दूसरी शताब्दी ई०पू० से ही प्रकाश डालते हैं। अयोध्या के शासक देवमित्र के सिक्के के पृष्ठ भाग पर मुर्गे का चित्रण ही स्कन्द का आभास कराते हैं। कभी-कभी सिक्के के पृष्ठ भाग पर मध्य में स्तम्भ है तथा बाईं ओर मुर्गा वृक्ष की ओर देखता चित्रित किया गया है। आर्य मित्र के सिक्कों पर भी पुरोभाग में भाला के सम्मुख

बाएं पर वृष तथा पृष्ठ भाग पर मुर्गे एवं वृक्ष का अंकन है। विजयमित्र के सिक्कों पर पुरोभाग पर बाएं पर वृष ध्वज के सम्मुख तथा पृष्ठ भाग पर वृक्ष बाए पर तथा मुर्गा दाहिने पर है। स्मिथ और डॉ॰ बनर्जी के अनुसार स्तम्भ पर सुशोभित मुर्गा कार्तिकेय का ही प्रतीक है।

अउदुम्बरो के सिक्को पर देव का चित्रण मनुष्य रूप मे किया गया है। अजमित्र के सिक्कों के पुरोभाग पर एक पुरुष दाहिने हाथ मे भाला लिए खड़ा है। योधेय के सिक्को पर कार्तिकेय को सरक्षक देव के रूप मे अकित किया गया है। एक अनोखे रजत योधेय सिक्के के जो कि कुनीन्द सिक्के के अनुरूप है, अग्र भाग पर षटमुख कार्तिकेय तथा विलोम भाग पर लक्ष्मी अंकित है जो सम्मुख मुख किए कमल पर दो सकेतों के मध्य खड़ी हैं तथा नीचे नदी है। कार्तिकेय के हाथो मे से एक में शक्ति तथा दूसरा हाथ कमर के पास रखा है। बाए से ब्राह्मी मे लेख है—'भागवत स्वामिनो ब्रह्मण्य···योधेय' और ताम्र सिक्को पर 'योधेय ···भागवत स्वामिनो ब्रह्मण्य देवस्य कुमारस्य' अंकित है। कुमार गुप्त के सिक्कों पर प्रभामडलयुक्त कार्तिकेय मयूर पर सवार हैं। उनके बाएं हाथ मे भाला है। उनके दाहिने हाथ मे क्या है, स्पष्ट नही। डॉ॰ राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार वह वेदी मे हवन पदार्थ अर्पित कर रहे हैं। डॉ॰ बनर्जी उनके दाहिने हाथ मे मातुलंग होना मानते हैं। मयूर की फैली हुई पख पूछ प्रभावली का कार्य करती है। देव के कानों मे कुण्डल तथा गले मे हार है। सिक्को पर महेन्द्र कुमारः या श्री महेन्द्र कुमारः अंकित है। कुमार गुप्त के इन सिक्को को एलन मयूर प्रकार का तथा अलतेकर कार्तिकेय प्रकार का कहते हैं।

कार्तिकेय का कला में भी सुन्दर प्रदर्शन हुआ है। कार्तिकेय के भक्त शासको तथा कलाकारो की असीम श्रद्धा ने इन्हें इतना सजीव कर दिया है कि देखते ही बनता है। कार्तिकेय की प्रतिमाओ का निर्माण सम्पूर्ण भारत मे हुआ। उडीसा के भुवनेश्वर मन्दिर मे कार्तिकेय एव गणेश को पार्श्व देवता के रूप मे दर्शाया गया है। चोल शासको के शासन काल मे दक्षिण के बहुत-से मन्दिरो में कार्तिकेय की प्रतिमा का निर्माण हुआ। इनमे से कुछ प्रतिमाए आज भी विद्यमान हैं। यह दक्षिण भारत मे सुब्रह्मण्यम, कार्तिकेय या मरुगन के नाम से आज भी पूजे जाते हैं। आठवी से ग्यारहवी शताब्दी तक की बहुत-सी कार्तिकेय प्रतिमाए पूर्व भारत में विभिन्न स्थानो पर मिली हैं। द्विभुजी देव द्विभंग खड़ा हुआ है। उनका वाहन मुर्गा उनके पास ही खड़ा हुआ दिखाया गया है। डॉ॰ बनर्जी महोदय ने दसवी शताब्दी के पुरी मन्दिर की एक स्कन्द प्रतिमा, जो अब लन्दन में है, का उल्लेख किया है। देव के मुख पर अनोखी शालीनता प्रस्फुटित हो रही है। उनका बाया हाथ मुर्गे पर रखा है और उनके टूटे हुए हाथ मे भाला है। उनका वाहन मुर्गा पीछे की ओर सिर किए बाईं ओर देख रहा है। देव का शरीर पूर्णतः आभूषणो

से सुसज्जित है। उनके केश शिखण्डक या काक पक्ष केश-विन्यास ढग से दर्शाये गए हैं। राव महोदय ने दक्षिण की बहुत-सी सुब्रह्मण्यम की मूर्तियों का उल्लेख किया है जिनमें वल्लि या महावल्लि सुब्रह्मण्यम की सहभागिनी के रूप में दर्शायी गई है। सुब्रह्मण्यम की इन मूर्तियों को वल्लिकल्याण सुन्दर मूर्ति भी कहा गया है।

उत्तर गुप्तकाल से कार्तिकेय शिव आराधना के निरन्तर बढ़ते चरण के साथ उत्तरी भारत में विलीन हो गए। आज भी दक्षिण भारत में वह अपने स्वतन्त्र रूप में भक्तों के आराध्य हैं। उत्तर भारत भी यद्यपि आज भी कार्तिकेय को पूर्णतः भुला नही पाया है किन्तु वह यहां इतने लोकप्रिय नही हैं जितने कि गणेश। हिन्दू पूजा विधान गणेश की आराधना से ही प्रारम्भ होता है।

अध्याय : नौ

सूर्य

मनुष्य ने जन्म से ही सूर्य से प्रस्फुटित प्रकाश को जगत समझा है। प्रकाश रात्रि के तम का हरण कर जीवन प्रदान करता है। मानव सूर्य के महात्म्य से परिचित हो उन्हें इष्टदेव मानने लगा। सूर्य को आदिदेव कहा गया है जिनसे समस्त देवों की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद उन्हें विश्व प्राण की संज्ञा देता है। सूर्य को वेदों में अग्नि, मित्र, वरुण का नेत्र कहा गया है।

शतपथ ब्राह्मण एक स्थान पर आदित्य की संख्या आठ तथा दूसरे स्थान पर बारह बताता है। सूर्य को पुराण शौर्य देवता के रूप में जानते हैं। आदित्य की मूर्तियों का विवरण हमें विश्वकर्मा शास्त्र में धात्रि, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, पूषन, विवास्वान, सविनि और विष्णु के नामों में मिलता है।

भविष्यत पुराण में सूर्य को असुरों का संहार करने वाला तथा देवताओं का दुख हरने वाला कहा गया है। पुराण के अनुसार जब सूर्य ने अपने ताप से असुरों को भस्म करना शुरू कर दिया तो असुरों ने सूर्य पर आक्रमण कर दिया। देवताओं ने सूर्य की सहायता की। उन्होंने स्कन्द को सूर्य के बाएं तथा अग्नि को उनके दाएं अंगरक्षक के रूप में खड़ा कर दिया। सूर्य ने असुरों को पराजित कर दिया। भविष्यत पुराण भी सूर्य की पूजा से श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब का कोढ़ ठीक हो जाने की बात कहता है। आज भी माना जाता है कि सूर्य की उपासना से शरीर निरोग रहता है।

सूर्य की पूजा का प्रचलन आदिकाल से ही भारत में है। यहां तक कि ईरान में भी सूर्य पूजे जाते थे जहां उन्हें मिथ्र एर्यमन, भग या मथो कहा जाता था। राव महोदय के अनुसार ये हिन्दुओं के मित्र, अर्यमन और भग के समरूपी हैं वेदों में सूर्य को स्वर्ण पंखयुक्त पक्षी के रूप में भी चित्रित किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य के चार अथवा सात अश्व के रथ में चलने का उल्लेख है। महाभारत में विशाल बाहु सूर्य पीताम्बर, कवच, कुण्डल तथा विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित हैं। ह्वेनसांग, एलेनिसी, इस्तखर, अलबरूनी इत्यादि ने अपने विवरणों

मे सूर्य मन्दिरों एवं सूर्य प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। मिहिरकुल के शिलालेख मे गोपाद्रि के सूर्य मन्दिर का उल्लेख है। मगध राजा जीवनगुप्त द्वितीय के देववरनंक शिलालेख मे विहार के शाहाबाद जिले मे सूर्य मन्दिर होने की बात कही गई है। कुमारगुप्त प्रथम तथा बन्धुवर्मन के मन्दसौर शिलालेख भी सूर्य मन्दिरो के विषय में प्रकाश डालते हैं। स्कन्द गुप्त के इन्दौर ताम्रपत्र अभिलेख में भी इन्द्रपुर में सूर्य मन्दिर होने का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन शिल्प शास्त्रों में जिनमे विश्वकर्मशिल्प, अंशुमद्भेदागम तथा सुप्रभेदागम का नाम उल्लेखनीय है, सूर्य के रूप का सुन्दर वर्णन मिलता है। विश्वकर्म शिल्प के अनुसार सूर्य के एक चक्र के रथ को सात अश्व खींचते हैं। सूर्य कुण्डल, कवच धारण करते हैं और उनके हाथों में कमल के फूल हैं। सूर्य के सीधे सुन्दर केश हैं। उनका मुख आभामण्डल से दीप्तिमान होता है। उनकी काया रत्न एवं स्वर्ण आभूषणों मे सुसज्जित है। उनके दाहिनी ओर उनकी सहभागिनी निक्षुमा तथा बाई ओर राज्ञी भांति-भांति के आभूषणों से सुसज्जित होकर विराजमान होती हैं। अंशुमद्भेदागम तथा सुप्रभेदागम के अनुसार सूर्य की प्रतिमा के दो हाथ होने चाहिए जिनमें उन्हें कमल धारण करना चाहिए। हाथ की मुट्ठिया जिनमें वह कमल धारण करते हैं, उनके कंधे के बराबर तक उठी होनी चाहिए। उनके सिर के चारों ओर आभामण्डल तथा उनका शरीर विभिन्न आभूषणों से अलकृत होना चाहिए। सूर्य को लाल वस्त्र धारण करना चाहिए। उनके सिर पर करण्ड मुकुट सुशोभित होना चाहिए। शरीर पर यज्ञोपवीत तथा वल्कल वस्त्र का कोट होना चाहिए जिससे उनके शरीर के अंग प्रत्यंग का प्रदर्शन हो सके। उनकी प्रतिमा या तो पद्मपीठ पर खडी होनी चाहिए या एक चक्र के सात अश्वो द्वारा खीचे जाने वाले रथ पर विराजमान होना चाहिए। सूर्य के दाहिनी ओर ऊषा और बाई ओर प्रत्युषा खडी होनी चाहिए। शिल्परत्न सूर्य के दोनों ओर मण्डल और पिंगल होना बताता है। मत्स्य पुराण के अनुसार सूर्य के मूछें होनी चाहिए। चतुर्भुजी सूर्य को कोट धारण करना चाहिए और उनके दाहिने व बाएं हाथो मे सूर्य किरणें हार की तरह प्रदर्शित की जानी चाहिए। सूर्य की कमर के चारों ओर याविायाग होनी चाहिए। उन्हें तरह-तरह के आभूषणो से सुसज्जित होना चाहिए। सूर्य की प्रतिमा के बाईं ओर दण्ड और दाहिनी ओर श्यामवर्ण पिंगल की प्रतिमा होनी चाहिए। सूर्य के दो हाथ उनके सिर पर रखे होने चाहिए। इन दो हाथो मे शूल और ढाल भी प्रदर्शित किए जा सकते हैं। सिंहाकृति से अलंकृत सूर्य ध्वज उनकी बाईं ओर प्रदर्शित किया जाना चाहिए। वृहत्संहिता मे सूर्य का रूप उत्तरी वेशभूषा में चित्रित है। उनका शरीर वक्षस्थल से पैर तक ढका हुआ होना चाहिए। सूर्य के सिर पर मुकुट, हाथों में बड़े नाल का कमल, कानो मे

कुण्डल, गले में हार, कमर में नियंग तथा मुख पर आवरण होना चाहिए। श्रीमद्भागवत के अनुसार सूर्य के रथ की गति प्रशंसनीय है। सूर्यरथ एक मुहूर्त में चौंतीस लाख आठ सौ योजन तय कर लेता है।

राव महोदय ने सूर्य की दक्षिणी तथा उत्तरी प्रतिमाओं के लक्षणों पर प्रकाश डाला है। सूर्य की दक्षिण भारतीय प्रतिमाओं में उनके हाथ कन्धों तक उठे रहते हैं जिनमें वह अर्धविकसित कमल के पुष्प धारण करते हैं। प्रतिमा में उदरबन्ध भी दर्शाया गया है। सूर्यदेव के चरण नंगे रहते हैं। सूर्य की उत्तर भारतीय प्रतिमाओं में उनके हाथ स्वाभाविक दशा में दर्शाये गए हैं। उनके हाथों में पूर्ण विकसित कमल के फूल उनके कंधों की ऊंचाई तक उठे रहते हैं। उनके पैर आधुनिक मोजे के समान वस्त्र से ढके हैं। उनके पैरों में जूते हैं। उदरबन्ध का प्रदर्शन उत्तर भारतीय प्रतिमाओं में नहीं है। उनके शरीर पर कोट के आकार का पहरन वस्त्र रहता है जिससे उनका अंग-प्रत्यंग ढकता है। सूर्य के शारीरिक सौन्दर्य को प्रदर्शित करने के लिए ही शायद ऐसा किया गया होगा। दक्षिणी तथा उत्तरी दोनों प्रकार की प्रतिमाओं में सूर्य के सिर पर किरीट मुकुट है और आभामण्डल भी दर्शाया गया है। कहीं-कहीं सात अश्व का रथ तथा सारथी अरुण भी दिखाई देता है।

एम. गांगुली महोदय ने उदयगिरि, मथुरा तथा साम्बपुर में तीन सूर्य मन्दिरों का उल्लेख किया है जिन्हें कृष्ण के पुत्र साम्ब द्वारा बनवाया जाना बताया जाता है। बनर्जी महोदय ने पश्चिमी पंजाब में चन्द्रभागा नदी के किनारे सूर्य मंदिर में सूर्य की स्वर्ण प्रतिमा होने का भी उल्लेख किया है। उन्होंने काशी पुर से प्राप्त एक अन्य सूर्य प्रतिमा का भी उल्लेख किया है जिसमें सूर्य अपने रथ में सारथी अरुण के साथ बैठे हैं। रथ के नीचे दैत्याकृति है। रथ को अश्व खींच रहे हैं। बनर्जी महोदय ने अफगानिस्तान के खैरखनेह नामक स्थान पर प्राप्त संगमरमर से बनी सूर्य प्रतिमा के प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षणों पर प्रकाश डाला है। इस प्रतिमा में सूर्य देव रथ पर आसीन हैं। उनका सारथी अरुण रथ चला रहा है। उनके बाईं ओर लेखनी पत्र लिए हुए पिंगल और दाहिनी ओर दण्ड उपस्थित हैं। सूर्य के चारों ओर चार पुरुष खड़े हुए हैं।

बनर्जी महोदय ने भूमरा के अवशेषों से प्राप्त सूर्य प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। सूर्य के अनुचर, दण्ड एवं पिंगल सूर्य के दोनों ओर प्रदर्शित किए गए हैं। सूर्य रथ पर सवार हैं जिसे उनका सारथी अरुण चला रहा है। सूर्यदेव किरीट मुकुट, कुण्डल, हार पहने आभामण्डल से युक्त हैं। सूर्य के हाथों में फूलों के गुच्छे हैं। शरीर पर यज्ञोपवीत है। उत्तर भारतीय सूर्य प्रतिमाएं खजुराहो के संग्रहालय में भी देखने को मिलती हैं। ये सचमुच बड़ी भव्य एवं दर्शनीय हैं।

राव महोदय ने कई दक्षिण भारतीय सूर्य प्रतिमाओं का उल्लेख किया है।

तंजौर जिले के सूर्यनारकोयिल ग्राम मे एक मन्दिर पूर्णतया सूर्य तथा नवग्रहो को समर्पित है। इस मन्दिर का निर्माण यहा से ही प्राप्त अभिलेखानुसार 1060-1118 ई० में हुआ था। राव महोदय के अनुसार मद्रास प्रेसीडेन्सी के गुडिमल्लम के परशु रामेश्वर मन्दिर मे सूर्य की सर्वप्राचीन दक्षिण भारतीय सूर्य प्रतिमा प्राप्त हुई है। प्रतिमा मे सूर्य के हाथ कधों तक उठे हुए हैं। राव महोदय इसके निर्माण की तिथि सातवी सदी मानते हैं। उन्होने एक अन्य सूर्य प्रतिमा जो मल्चेरि के शिव मन्दिर मे प्राप्त हुई है, का भी उल्लेख किया है। यहा सूर्य समतल आसन पर खड़े हुए हैं जिसके नीचे सात अश्व और सारथी अरुण भी प्रदर्शित हैं। सूर्य के हाथो मे कमल है। उनके हाथ कन्धो तक उठे हुए हैं। ऊषा और प्रत्यूषा धनुष बाण धारण किए हुए प्रदर्शित की गई हैं। यहा सूर्य रथ के दो चक्र प्रदर्शित किए गए हैं जो कि एक विशिष्टता है।

पश्चिमी गुजरात का मोधेरा तथा कोणार्क के सूर्य मन्दिर के पूर्व द्वार पर नौ ग्रहो की प्रतिमाए शोभनीय थी, जो अब मन्दिर के आसपास रखी दृष्टिगोचर होती हैं। सूर्य के रथ को सात अश्व खीच रहे हैं। मन्दिर के कुछ शिखर टूट गए हैं किन्तु दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तरी कोने पर जो सूर्य प्रतिमाए हैं उनमे सूर्योदय, मध्याह्न सूर्य और अस्त होते सूर्य का प्रदर्शन अद्वितीय है। मन्दिर के पायों पर युद्ध दृश्य, हाथियो तथा हाथी पकड़ने के दृश्याकित हैं। मन्दिर के चारों ओर स्त्री-पुरुषों के गाते-बजाते एव नृत्य करते समूह तो सचमुच देखते ही बनते हैं।

सौर्यमण्डल वैज्ञानिको एव भूगोल शास्त्रियो का सदा से ही आकर्षण बिन्दु रहा है। मानव ने सदा से ही इस विषय मे अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने के प्रयास किए हैं। पौराणिक ग्रन्थ सूर्य मन्दिरो मे नौ ग्रहो की स्थिति इस प्रकार बताते हैं—पूर्व सोम, दक्षिण-पूर्व मे भौम, दक्षिण मे बृहस्पति, दक्षिण-पश्चिम मे राहु, पश्चिम मे शुक्र, उत्तर-पश्चिम मे केतु, उत्तर में बुद्ध तथा उत्तर-पूर्व मे शनि। वैज्ञानिक अध्ययन आज सौर्यमण्डल को अन्तरक्षेत्रीय तथा बाह्यक्षेत्रीय दो भागो मे विभाजित करते हैं। अन्तरक्षेत्रीय ग्रहो मे बुद्ध, शुक्र, पृथ्वी और मगल आते हैं और बाह्य क्षेत्रीय ग्रहो मे बृहस्पति, शनि, यूरनेस तथा वरुण का नाम उल्लेखनीय है। सौर मण्डल के एक किनारे पर स्थित है प्लूटो। हो सकता है कि इन ग्रहो की स्थिति के विषय मे आज का वैज्ञानिक ज्ञान पौराणिक ग्रहो की स्थिति से पूर्णत: साम्यता न रखता हो जिसके विषय मे तुलनात्मक अध्ययन के बिना कुछ कहना शायद सम्भव नही, फिर भी हम अपने पूर्वजो के भौगोलिक ज्ञान का आभास कर ही विस्मय मे पड जाते है। जब विश्व सौर मण्डल के रहस्य से अनभिज्ञ था, ऐसे समय मे सौर मण्डल के रहस्यो का उद्घोष करना तथा ग्रहो को भव्य प्रतिमाओं मे यथानुसार सजोना भारतीयो की ज्ञान पराकाष्ठा

का ही तो द्योतक है।

आज के वैज्ञानिक अध्ययन जो सूर्य का रूप हमारे सम्मुख रखते हैं उसका संक्षेप में यहा उल्लेख कर देना शायद आवश्यक है। सूर्य के अन्तः में असंख्य सेंटीग्रेड डिग्री का ताप निरन्तर ग्रहवाति मे हाईड्रोजन के ऊष्म न्यूँष्टिक सलयन से उत्पन्न होता है। यह ऊष्णा प्रभा प्रसारण द्वारा वाति की वेष्टित सतहो मे परिवर्तित हो जाती है जिसे वर्णमडल कहा जाता है। इस सतह से हजारो सेंटीग्रेड डिग्री के ताप से सूर्य ज्वालाएं प्रसरण करती हैं। सूर्य के चमकते प्रकाश मण्डल मे अनुमानतः छह हजार सेंटीग्रेड डिग्री ताप है। दूरदर्शी यन्त्रो के माध्यम से देखने मे इसका रूप रग-बिरंगी बिन्दियो से युक्त दिखाई देता है। आज हम सूर्य की ऊष्णा का पूर्ण वैज्ञानिक लाभ उठाने मे प्रयत्नशील हैं। सूर्य की उपयोगिता हमारे प्रतिदिन के जीवन मे निरन्तर बढती जा रही है। सौर विज्ञान के विभिन्न पहलू क्या-क्या रहस्य खोलते हैं यह हमे देखना है और सूर्य के सुन्दर, मनोरम, उपयोगी स्वरूप की पूजा करनी है।

अध्याय : दस

प्रतिमाओं तथा ग्रंथों का सम्बन्ध

भारत के विभिन्न स्थानो से प्राप्त प्रतिमाएं तथा तत्सम्बन्धित ग्रन्थो मे प्राप्त विवरणो की समानता के आधार पर राव महोदय का कथन है कि समस्त भारत मे बनाई गई प्रतिमाओ की रचना शैलियो की एकरूपता को देखते हुए यह कहा जा सकता कि कलाकारो ने इनकी रचना करते समय आगम तथा तन्त्रों मे वर्णित नियमों का पूर्णतः पालन करने का प्रयत्न किया है। यह बात अवश्य है कि भारत के विभिन्न स्थानो मे बनाई गई प्रतिमाओं में यह अन्तर उनकी साज-सज्जा मे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक ही देवता के स्वरूप की झाकी विभिन्न प्रतिमा-शास्त्र सम्बन्धी ग्रथो मे कभी-कभी कुछ अलग-अलग लक्षणों से युक्त देखने को मिलती है और यह विभिन्नता उनकी विभिन्न मूर्तियो मे भी देखी जा सकती है। यह अन्तर विष्णु, लक्ष्मी, कार्तिकेय, शिव या सूर्य की मूर्तियों मे भी देखने को मिलता है।

वैखानसागम में विष्णु के ध्रुववेरस रूप का उल्लेख है जो दक्षिण भारतीय विष्णु मूर्तियों मे देखने को मिलता है। दक्षिण भारतीय विष्णु मूर्तियो मे योग मूर्तियो को छोड़कर विष्णु की अनुचर श्री एवं भूदेवी दिखाई गई हैं। वे चंवर के अतिरिक्त क्रमशः कमल और नीलकमल लिए हुए हैं। दूसरी ओर उत्तर भारतीय विष्णु मूर्तियों मे श्री और सरस्वती क्रमशः कमल और वीणा लिए हुए हैं। इन विशिष्ट लक्षणो का उल्लेख मत्स्य एव अग्नि पुराण मे भी मिलता है। मत्स्य पुराण के अनुसार श्री और पुष्टि को विष्णु के बगल मे बनाना चाहिए। उनके हाथ मे कमल होना चाहिए। कालिका पुराण के अनुसार श्री को विष्णु के दाईं ओर और सरस्वती को बाईं ओर बनाना चाहिए। अंशुमद्भेदागम, सुप्रभेदागम और शिल्परत्न मे उत्तर भारतीय सूर्य मूर्तियों के लक्षणों का उल्लेख नहीं है जबकि बृहत्सहिता, विश्वकर्मावतारशास्त्र, विष्णु धर्मोत्तर, मत्स्य पुराण और अग्नि पुराण मे उत्तर भारतीय सूर्य प्रतिमाओ के लक्षणो का स्पष्ट उल्लेख है। इस आधार पर पहला वर्ग दक्षिण भारतीय तथा दूसरा वर्ग उत्तर भारतीय

कहा जा सकता है। भारतीय कलाकारों ने दोनों वर्ग के ग्रंथों का सहारा लिया है और दोनों वर्गों के ग्रन्थों में वर्णित प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी देव लक्षणों को अपने शिल्प में साकार किया है।

प्राप्त मूर्तियों में अधिकतर मूर्तियों के लक्षण ग्रन्थों में वर्णित लक्षणों से मिलते हैं। इनमें कुछ ऐसी भी मूर्तियां हैं जिनके लक्षणों का ग्रंथों में आंशिक रूप से उल्लेख हुआ है। ग्रन्थों में कुछ देवताओं के विशिष्ट लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है किन्तु इस प्रकार की प्रतिमाएं हमें प्राप्त नहीं हो सकी हैं। ग्रंथों में वर्णित इन लक्षणों के आधार पर या तो कोई प्रतिमा ही नहीं बनाई गई या वे हमें प्राप्त नहीं हो सकी हैं। डॉ० बनर्जी के शब्दों हम यह कह सकते हैं कि वास्तविक मूर्तियों तथा ग्रंथों के विषय में हमारा ज्ञान पूर्ण नहीं है। आज जो हमें मूर्ति शास्त्र सम्बन्धी साहित्य प्राप्त है वह मौलिक मूर्तिशास्त्र साहित्य का एक भाग भी नहीं है। सम्भव है, शेष भाग भविष्य में हमें प्राप्त हो। प्राप्त मूर्तियों की संख्या मुद्राओं पर खुदी हुई मूर्तियों की अपेक्षा कम है। अधिकांश प्रतिमाएं जिनमें अनेक बहुमूल्य कृतियां रही होंगी, नष्ट हो चुकी हैं।

मत्स्य पुराण में देवी के अनेक रूपों का उल्लेख है। इनमें से एक रूप शिवदूती का भी है। देवी के इस रूप की कोई भी मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है। महेश अय्यर ने सर्वप्रथम देवी के इस पौराणिक रूप को एक मूर्ति से पहचाना है जो सर्वमान्य नहीं है। भेड़ाघाट के चौंसठ योगिनी के मन्दिर की अनेक देवी मूर्तियों को पहचाना नहीं जा सका है। इन मूर्तियों के नीचे जो पीठिकाएं प्राप्त हुई हैं उन में से कुछ अवश्य ही अपनी मूल मूर्तियों की नहीं है। इन पीठिकाओं पर जिन देवियों के नाम अंकित हैं, वे प्राप्त ग्रन्थों में आए देवियों के नामों से मिलते हैं। देवियों के कुछ रूप जैसे ब्राह्मणी, महेश्वरी, वराही, वैष्णवी इत्यादि के विवरण ग्रंथों में मिलते हैं लेकिन उनके कुछ रूप जैसे देहारी, लम्पट, साण्डिनी इत्यादि का उल्लेख प्राप्त ग्रन्थों में नहीं मिलता है। ये ग्रन्थ देवी के कुछ अन्य रूपों का उल्लेख करते हैं। किन्तु अभी तक इस प्रकार की मूर्तियां उपलब्ध नहीं है, शायद भविष्य में प्राप्त हो।

द्वितीय खण्ड

☼

☼

☼

प्रतिमा विज्ञान और सम्प्रदाय

जैन सम्प्रदाय और प्रतिमा विज्ञान

बौद्ध सम्प्रदाय और प्रतिमा विज्ञान

अध्याय : ग्यारह

जिन प्रतिमाओं का विकास

जैन धर्म मे सर्वोच्च स्थान तीर्थंकरो को दिया गया है। तीर्थंकरों को जिन (राग, द्वेष, मोह आदि का विजेता) भी कहा जाता है। उन्हे देवादिदेव भी कहा गया है। देवता जन्म तथा मृत्यु के बन्धन मे हैं। तीर्थंकर या जिन इस बन्धन से मुक्त हैं। यद्यपि सभी तीर्थंकर समान हैं परन्तु प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ, सप्तम तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ और अंतिम तीर्थंकर महावीर निःसन्देह ऐतिहासिक महापुरुष हैं।

सामान्यतः प्रतिमा में ऋषभनाथ के केश कधे तक प्रदर्शित किए जाते हैं। पार्श्व और सुपार्श्वनाथ के ऊर्ध्व पर साधारणतः नागफण रहता है, जिससे वे अन्य तीर्थंकरो से अलग पहचाने जा सकते हैं।

जिन प्रतिमाओ का विकास प्रारम्भ से ही होता आ रहा है। इसके विकास की विभिन्न अवस्थाएं हैं। प्रथम अवस्था मे जिनो की स्वतन्त्र प्रतिमाएं उपलब्ध नही होती हैं। उनका प्रदर्शन अयागपटो पर कुछ संकेतो द्वारा किया गया है। अयागपट पत्थरों के खण्ड होते थे जिन पर शुभ चिह्न अष्ट मागलिक मत्स्य, मगलघट, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, स्वस्तिका, श्रीवत्स, राज आसन और दर्पण बने होते हैं। मथुरा के कंकाली टीले से इस प्रकार के काफी अयागपट उपलब्ध हुए हैं। इन अयागपटो की लिपि के आधार पर कुषाण काल से पूर्व का समय निश्चित किया गया है।

जिन प्रतिमाओ के विकास का द्वितीय चरम भी अयागपटों पर ही पाया जाता है। अयागपटो के मध्य तीर्थंकर पद्मासन मे बैठे हुए है। इन अयागपटों पर बनी जिन प्रतिमाओ के साथ कोई विशिष्ट संकेत नही हैं जिनसे विभिन्न तीर्थकरो को पहचाना जा सके। एक अयागपट मे अष्ट मगलों के मध्य बनी जिन प्रतिमा के ऊपर नागफण बना है। यह जिन पार्श्वनाथ हैं। पूर्व कुषाण काल के इन अयागपटो पर बनी जिन प्रतिमाओ पर किसी प्रकार का विदेशी प्रभाव नही है। वे पूर्णतः भारतीय शैली की हैं। इन जिन प्रतिमाओ मे प्रदर्शित

भाव अवश्य ही परम्परागत ध्यान मुद्रा मे लीन भारतीय योगियों से लिया गया है।

जिन प्रतिमाओ के विकास के तृतीय चरण मे अयागपट नही हैं। इस समय जिनों की स्वतन्त्र प्रतिमाए बनने लगी। इन प्रतिमाओ के प्रतिमा शास्त्रीय लक्षण शिव की योग दक्षिण मूर्ति तथा गौतम बुद्ध की प्रतिमाओ से साम्यता रखते है। प्रतिमाए पूर्णतः विवस्त्र है। इस काल की जिन प्रतिमाओ से यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि ये दिगम्बरो की है या श्वेताम्बरो की। सम्भवतः यह दिगम्बरो की नही है क्योकि इन प्रतिमाओ के साथ गणधर हैं जो विभिन्न वस्त्रालंकार से विभूषित है। दिगम्बर सम्प्रदाय ऐसे किसी भी स्त्री-पुरुष को प्रवेश नही देता है। इन प्रतिमाओ के वक्षस्थल पर श्रीवत्स सकेत रहता है। ये मूर्तिया बैठी होने पर पद्मासन मे है और खड़ी होने पर कायोत्सर्ग मुद्रा मे। इन मूर्तियो की एक अन्य विशेषता है कि इनके दाहिनी या बाई ओर स्त्री या पुरुष गणधर उपस्थित रहते है जिनके हाथ मे चौरी रहती है। गणधर तत्कालीन तीर्थंकर के सबसे बड़े भक्त होते थे। वस्तुतः उस समय का राजा ही गणधर के रूप मे दिखाया जाता है। वर्धमान महावीर के गणधर बिम्बसार और ऋषभनाथ के गणधर भरत है। कुषाणकालीन इन जिन प्रतिमाओ मे विभेद कर पाना कठिन है क्योकि जिनो के लाछन समान है। पार्श्वनाथ की प्रतिमाओं पर नाग फण होने के कारण उन्हे स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। कही-कही इन पर अकित अभिलेखो से भी इन तीर्थंकरो को पहचाना गया है।

जिन प्रतिमाओ का चतुर्थ चरण गुप्तकाल है। कुषाणकाल तक विभिन्न तीर्थंकरो मे विभेद कर पाना कठिन था। केवल कुछ तीर्थंकर ही पहचाने जा सकते थे। इस काल मे प्रथमतः इनमे विभेद करने का प्रयत्न किया गया। उदाहरणार्थ आदिनाथ का लाछन वृषभ है, महावीर का लाछन सिंह है। लाछन आधार-स्तम्भ, जिसके ऊपर जिन प्रतिमाए बनाई जाती थी, के ठीक मध्य मे बनाया जाता था। वृहतसहिता मे जिन प्रतिमाओ के लक्षण—अजानबाहु, श्रीवत्स सकेत, प्रशान्त मुद्रा, तरुण रूप तथा नग्नावस्था इत्यादि का वर्णन है।

जिन प्रतिमाओ के विकास की पचम अवस्था मे उनके साथ यक्ष-यक्षणियां सेवक-सेविका के रूप मे दर्शाये गए है। इन यक्ष-यक्षणियो को शासन देवता भी कहा जाता है। जिन प्रतिमाओ के दाहिनी ओर यक्ष तथा बाई ओर यक्षिणी रहती है। तीर्थंकर मध्य मे दिखाए जाते हैं। उनके सम्मुख गणधर दिखाये जाते हैं। *आधार स्तम्भ के मध्य उनका विशिष्ट लाछन बना रहता है।*

चौबीस तीर्थंकरो के अलग-अलग एक-एक यक्ष तथा यक्षिणी होती है। उदाहरणार्थ महावीर का यक्ष मातग तथा यक्षिणी सिद्धायिका है। इन यक्ष-यक्षणियो के नाम हिन्दू धर्म के श्रेष्ठ देवी-देवताओ के है जैसे ईश्वर चतुरानन,

कुमार, चक्रेश्वरी, कालिका, महाकाली, गौरी इत्यादि। यह तीर्थंकरों को हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास है। यक्ष-यक्षणियां अपने हाथों में फल, फूल, बीजपूरक तथा अस्त्र-शस्त्र धारण करते हैं। यक्ष तीर्थंकरों की रक्षा करते हैं। इनका विकास शायद गुप्तकाल में हुआ।

जिन प्रतिमाओं के विकास के षष्ठम चरण में जिन प्रतिमाएं जटिल हो जाती है। प्रतिमाओं के चारों ओर अष्ठ प्रतिहार बनाए जाते थे जो कैवल्य वृक्ष, नन्दीवर, दुन्दभि, चामर, आसन, सुरभ आदि हैं। तीर्थंकर की प्रतिमा छोटी हो जाती है। उनके सहकारी उनके चारों ओर का अधिकाधिक स्थान घेर लेते हैं। मध्य में तीर्थंकर होते हैं। उनके पीछे ऊपर की ओर कैवल्य वृक्ष होता है। पीछे दाहिने ओर यक्ष तथा बाईं ओर यक्षिणी होती है। उनके सम्मुख चौरी धारण किए हुए गणधर रहते हैं।

जिन प्रतिमाओं का निरन्तर विकास होता रहा। प्रारम्भ में जिन प्रतिमाओं का प्रदर्शन प्रतीक रूप में हुआ परन्तु कालान्तर में भारत के अन्य धर्मों की भांति जैनियों ने भी प्रतिमा पूजा स्वीकार कर ली। अन्य देवी-देवताओं की ही भांति जिन प्रतिमाओं का सृजन किया जाने लगा। जिन प्रतिमाओं का उनके बढ़ते प्रभाव के कारण आकार छोटा होता गया और उनके आसपास उनके सहकारी तत्वों का दिन पर दिन विकास होता गया।

अध्याय : बारह

तीर्थाकर

तीर्थाकरों की प्रतिमाएं उनके विभिन्न लांछन, संकेत, यक्ष-यक्षणिया तथा अन्य लक्षणो का प्रदर्शन करती हैं। इन लक्षणो के आधार पर चौबीस तीर्थांकरो को पहचाना जा सकता है।

आदिनाथ—आदिनाथ प्रथम तीर्थांकर हैं जो वृषभनाथ के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनका लाछन वृष है, यक्ष गोमुख और यक्षिणी चक्रेश्वरी या अप्रतिचक्रा। जिस वृक्ष के नीचे उन्होंने कैवल्य प्राप्त किया वह निग्रोध है। इनका सकेत धर्मचक्र है। इनके कन्धो तक केश जटाएं हैं।

अजितनाथ—अजितनाथ का लाछन गज, वृक्ष स.प्तयशा, यक्ष महायक्ष तथा यक्षिणी अजितवाला हैं।

सम्भवनाथ—सम्भवनाथ का लाछन अश्व, वृक्ष शालवृक्ष, यक्ष त्रिमुख तथा यक्षिणी दुरितारि देवी हैं।

अभिनन्दननाथ—अभिनन्दननाथ का लाछन बन्दर, वृक्ष पियालवृक्ष, यक्ष ईश्वर तथा यक्षिणी काली हैं।

सुमतिनाथ—सुमतिनाथ का सकेत क्रौन्च है। उनका वृक्ष प्रियांग, यक्ष तुम्बुरू और यक्षिणी महाकाली हैं।

पद्मप्रभ—पद्मप्रभ का लाछन पद्म, वृक्ष छत्रभि, यक्ष कुसुम एव यक्षणी श्यामा हैं।

सुपार्श्वनाथ—सुपार्श्वनाथ का लाछन स्वास्तिक है। सर्पफणो की संख्या एक, पाच, नौ है। उनका वृक्ष सिरीश है। श्वेताम्बरो के अनुसार यक्ष मातंग और यक्षिणी का नाम शान्ति है किन्तु दिगम्बरो के अनुसार यक्ष वरनन्दि तथा यक्षिणी काली हैं।

चन्द्रप्रभ—चन्द्रप्रभ का संकेत अर्धचन्द्र है। उनका वृक्ष नागकेशर, यक्ष विजय तथा यक्षिणी भ्रकुटि या ज्वालमालिन हैं।

सुविधिनाथ—सुविधिनाथ का सकेत मकर, वृक्ष नाग या मल्लिका, यक्ष

अजित तथा यक्षणी मूनरि देवी हैं।

शीतलनाथ—श्वेताम्बरो के अनुसार शीतलनाथ का लांछन श्रीवत्स है। दिगम्बरो के अनुसार यह अश्वत्थ है। उनका कैवल्य वृक्ष पीपल है। यक्ष ब्रह्म है। श्वेताम्बरो के अनुसार यक्षिणी अशोका है और दिगम्बरो के अनुसार मानवी।

श्री श्रंशनाथ—श्री श्रंशनाथ का संकेत गेंडा है। उनका कैवल्य वृक्ष तुम्बर है। श्वेताम्बरो के अनुसार श्री श्रंशनाथ का यक्ष यक्षेत तथा यक्षिणी मानवी हैं। दिगम्बरों के अनुसार यक्ष ईश्वर तथा यक्षिणी गौरी हैं।

वासुपूज्य—वासुपूज्य का लांछन भैंस है। इनका वृक्ष कदम्ब तथा यक्ष कुमार है। श्वेताम्बरों के अनुसार यक्षिणी चण्डा तथा दिगम्बरों के अनुसार गन्धारिन है।

विमलनाथ—विमलनाथ का लांछन वराह, वृक्ष जामुन और यक्ष षडमुख है। दिगम्बरो के अनुसार यक्षिणी वैराटी जबकि श्वेताम्बरो के अनुसार विदिता है।

अनन्तनाथ—श्वेताम्बर अनन्तनाथ का संकेत बाज पक्षी तथा दिगम्बर भालू बताते हैं। इनका वृक्ष अश्वत्थ तथा यक्ष पाताल है जिसका दूसरा नाम शेषनाग है। दिगम्बरों के अनुसार अनन्तनाथ की यक्षिणी अनन्तमति है जबकि श्वेताम्बर उसे अकुशा बताते हैं।

धर्मनाथ—धर्मनाथ का चिह्न वज्र है, वृक्ष दधिदर्पण और यक्ष किन्नर। श्वेताम्बरों के अनुसार उनकी यक्षिणी कन्दर्पा और दिगम्बरों के अनुसार मानसी है।

शान्तिनाथ—शान्तिनाथ का लांछन हिरन तथा वृक्ष नन्दि वृक्ष है। दिगम्बरों के अनुसार यक्ष तथा यक्षिणी किम पुरुष और महामानसी हैं। श्वेताम्बरो के अनुसार वे गरुड और निर्वाणी हैं।

कुन्थुनाथ—कुन्थुनाथ यक्ष गांधार है। श्वोम्बरों के अनुसार उनकी यक्षिणी बाला है और दिगम्बरों के अनुसार विजया। उनका लाछन गोल है एवं वृक्ष निल्कनोरू है।

अरनाथ—अरनाथ का लांछन नन्दवावार्त्य या मीन है। उनका वृक्ष आम्र, यक्ष यक्षेन्द्र तथा यक्षिणी धरिणिदेवी हैं।

मल्लिनाथ—मल्लिनाथ का लांछन घट, वृक्ष अशोक, यक्ष कुवेर और यक्षिणी श्वेताम्बरो के अनुसार धर्मप्रिया और दिगम्बरो के अनुसार अपराजित हैं।

मुनिसुव्रत—मुनिसुव्रत का लाछन कच्छप, वृक्ष चम्पक, यक्ष वरुण तथा यक्षिणी श्वेताम्बरो के अनुसार नरदन्ता तथा दिगम्बरों के अनुसार बहुरूपणी है।

नमीनाथ—नमीनाथ का लांछन नीला या लाल कमल है या फिर अशोक वृक्ष। उनका कैवल्य वृक्ष वाकुल है। यक्ष भ्रकुटि और यक्षिणी श्वेताम्बरों के अनुसार गन्धारी तथा दिगम्बरों के अनुसार चामुण्डी हैं।

नेमिनाथ—नेमिनाथ का संकेत शंख, वृक्ष वासवृक्ष और यक्ष गोमेख है। श्वेताम्बर नेमिनाथ की यक्षिणी अम्बिका और दिगम्बर कुसुमण्डिनी को मानते हैं।

पार्श्वनाथ—पार्श्वनाथ का संकेत सर्प, वृक्ष देवदार, यक्ष वामन या धरणेन्द्र और यक्षिणी पद्मावती है।

महावीर—भगवान महावीर का संकेत सिंह है। उनका कैवल्य वृक्ष शा— वृक्ष, यक्ष मातंग, यक्षिणी सिद्धायिका और गणधर बिम्बसार हैं।

अध्याय : तेरह

यक्ष-यक्षणियां

वैदिक काल मे यक्ष शब्द का अर्थ तीव्र प्रकाश की किरण से लिया जाता था। पाली टीकाओ में यक्ष का अर्थ ऐसे व्यक्तियों से लिया गया है जिन्हें बलि चढ़ाया जाता है। कुमार स्वामी का मत है कि इस शब्द का अर्थ अनार्य है। अथर्ववेद में यक्षों को इतरजन कहा गया है। सिन्धु घाटी सभ्यता में मूर्ति पूजा का प्रचलन था। सम्भवत. यक्षो की भी पूजा की जाती होगी। कहा जाता है कि यक्षो का निवास स्थान वृक्ष है। सिन्धु घाटी सभ्यता के नगरो की खुदाई मे कुछ ऐसी मुहरें मिली हैं जिन पर एक वृक्ष और उसकी दो शाखाएं अंकित हैं। वृक्ष की इन शाखाओं के मध्य एक मानवाकृति निकलती हुई प्रतीत होती है। किन्हीं मुहरों पर वृक्ष के ऊपर मानवाकृति बैठी हुई दिखाई गई है। अनुमान किया जा सकता है कि यह यक्ष प्रतिमा ही है जिसकी पूजा जन-साधारण मे प्रचलित रही होगी।

जब वैदिक आर्यों ने भारत पर अधिकार कर लिया और इस देश में स्थायी रूप से बस गए, वे यहां के आदिवासियों के सम्पर्क मे आए। शनैः-शनैः उन्होने एक-दूसरे की परम्परा, रहन-सहन तथा तौर-तरीकों को अपना लिया। उन्होंने आदिवासियो के कुछ पूज्यों को भी अपने पूज्यो मे सम्मिलित कर लिया जिनमे यक्ष भी थे। किन्तु यक्षो को मौलिक रूप से जो स्थान प्राप्त था वह न रहा, और उनकी स्थिति निम्न हो गई।

पतंजलि के महाभाष्य मे यक्षों का उल्लेख कुबेर के अनुचर के रूप में हुआ है। यद्यपि महाभाष्य में कुबेर नाम नहीं मिलता परन्तु यक्षपति या गुह्यकपति वैश्रवण का कई बार उल्लेख है। पतंजलि के अनुसार यक्षो की प्रतिमाएं बनती थीं और उनके मन्दिर थे। इस तथ्य की पुष्टि प्रारम्भिक बौद्ध और जैन ग्रन्थों से भी होती है। भारतीय परम्परानुसार यक्षो को धन का देवता माना गया है और धन के स्वामी कुबेर को इनका पूज्य माना गया है।

बहुत बड़ी संख्या मे यक्ष-यक्षणियो की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जिनमें निम्न-

लिखित उल्लेखनीय हैं :

क. पारखम यक्ष	घ. लोहिनीपुर यक्ष
ख. बरोदा यक्ष	ङ. पद्मावती यक्ष
ग. पटना यक्ष	च. दीदारगंज यक्षिणी

पद्मावती यक्ष प्रतिमा पर उत्कीर्ण अभिलेख से ज्ञात होता है कि मणिभद्र भक्तों की गोष्ठी ने यह प्रतिमा स्थापित की थी। प्रतिमाओं के निर्माण का समय मौर्य और शुंग युग से पहले या आसपास का है। अधिकांशत: प्रतिमाएं ग्वालियर और मथुरा के समीप मिली हैं। मूर्तियां काफी भारी और बड़े आकार की हैं। अग्रभाग पर कारीगरी है और पृष्ठ भाग सादा है। मूर्तियां सामान्य वस्त्र धारण किए हुए हैं। घुटनों तक धोती, सामान्य आभूषण और कभी-कभी चौरी धारण किए हुए हैं। कल्पसूत्र मे चौरी को शुभ माना गया है।

बौद्ध कला में यक्षों को बुद्ध के सेवक के रूप मे प्रदर्शित किया गया है। वे बुद्ध के संरक्षक भी हैं। गान्धार कला मे वज्रपाणि अदृश्य रहकर भी बुद्ध के सदैव साथ है।

जैन कला मे भी यक्षो को तीर्थंकरो के सेवक और सरक्षक के रूप मे दिखाया गया है। यक्षों के हाथो मे युद्ध के विभिन्न आयुध हैं जिससे वे अपने स्वामी की रक्षा करते हैं। एक जैन कथानुसार पार्श्वनाथ अहिच्छत्र के निकट तप कर रहे थे। उनके शत्रु राक्षस ने भयकर वृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया जिससे कि पार्श्वनाथ जल प्रवाह मे फंसकर बह जाए। पार्श्वनाथ के शासन देवता धरणेन्द्र यक्ष ने नागफण बनाकर पार्श्वनाथ के ऊपर छत्र बना दिया। धरणेन्द्र ने पार्श्वनाथ के नीचे गेंडुली बनाकर उस पर पार्श्वनाथ को आसीन कर दिया जिससे नीचे बहते हुए पानी से भी उनकी रक्षा हो गई। राक्षस के प्रयत्न असफल हो गए। यक्षो के हाथ मे पुष्प या बीजपूरक होता है जो कि उनके शान्ति और सौम्य स्वभाव को प्रकट करता है।

यक्षो ने अधिकतर अपना नाम ब्राह्मण सम्प्रदाय के देवताओ से लिया है। यक्ष-यक्षणियां ब्रह्मा, ईश्वर, षडमुख, काली, महाकाली, अम्बिका और गौरी आदि नामो से जाने जाते हैं। नामो के अतिरिक्त वाहन तथा अन्य प्रतिमा शास्त्रीय लक्षण भी उन्होने ब्राह्मण देवी-देवताओ से लिए है। अधिकतर यक्ष पूर्णत: मानवीय रूप मे प्रदर्शित नही किए गए हैं अपितु अर्धमानव या अर्धपशु रूप मे दिखाए गए हैं। गोमुख यक्ष का मुख वृषभ का है परन्तु शरीर मनुष्य का। यह विशेषता भी तो ब्राह्मण धर्म से ही ली गई है। सिन्धु घाटी सभ्यता काल की कुछ मुहरें इस प्रक्रिया को स्पष्ट करती हैं।

अध्याय : चौदह

गौण जैन देवताओं पर ब्राह्मण देवताओं की छाप

समय-समय पर विभिन्न धर्म के अनुयायियों ने सम्भवतः वैमनस्यता की भावना से प्रेरित होकर अपने धर्म के देवताओ को दूसरे धर्म के देवताओ से उच्च सिद्ध करने का प्रयास किया है। नरसिंह प्रतिमा की रचना का मुख्य ध्येय विष्णु को शिव से श्रेष्ठ ठहराना है। ठीक इसी प्रकार शिव की शरव मूर्ति विष्णु पर उनकी श्रेष्ठता प्रदर्शित करती है। शायद इसी भावना ने जैन धर्म के अनुयायियों को तीर्थंकरो को ब्राह्मण धर्म के देवताओं से उच्च ठहराने के लिए प्रेरित किया होगा। जिन प्रतिमाओ के विकास की पचम अवस्था में उनके साथ सेवक-सेविका के रूप मे यक्ष-यक्षणियां को दिखाया गया है जिनको शासन देवता भी कहते हैं। जिन प्रतिमाओं के दाहिनी ओर यक्ष तथा बाईं ओर यक्षिणी रहती हैं। चौबीस तीर्थंकरों की अलग-अलग यक्ष-यक्षणियां हैं। इन यक्ष-यक्षणियो के नाम हिन्दू धर्म के श्रेष्ठ देवी-देवताओं के नाम हैं जैसे ईश्वर, ब्रह्मा, कुमार, कुबेर, चक्रेश्वरी, काली महाकाली, गौरी इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन-शिल्पियो ने तीर्थंकरों को हिन्दू देवताओं से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया है।

आचारदिनकर, उत्तराध्यायन सूत्र और अभिदानचिन्तामणि आदि जैन ग्रंथ इस धर्म के गौण देवताओं को चार वर्गों में विभक्त करते हैं : ज्योतिषी, विमानवासी, भवनपति और व्यन्तर। जिन प्रतिमाओं को छोड़कर जिन अन्य देवताओ की प्रतिमाए जैन प्रतिमा कला मे पाई जाती हैं उनमे दस दिकपाल : इन्द्र, अग्नि, यम, निगृति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, पातालाधीश्वर नागदेव, ऊर्ध्वलोकाधीश्वर ब्रह्मा, नवग्रह : रवि, सोम, भौम, बुद्ध, गुरु, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु और तीर्थंकरो के सेवक-सेविकाए यक्ष-यक्षणिया सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त सोलह विद्यादेवी, याश्रुति देवी, अष्टमातृका, चौसठ योगिनी, श्री या लक्ष्मी, भैरव, गणेश, क्षेत्रपाल आदि का भी प्रदर्शन जैन प्रतिमा कला मे देखने को

लिखित उल्लेखनीय हैं :

क. पारखम यक्ष	घ. लोहिनीपुर यक्ष
ख. बरोदा यक्ष	ङ. पद्मावती यक्ष
ग. पटना यक्ष	च. दीदारगंज यक्षिणी

पद्मावती यक्ष प्रतिमा पर उत्कीर्ण अभिलेख से ज्ञात होता है कि मणिभद्र भक्तों की गोष्ठी ने यह प्रतिमा स्थापित की थी। प्रतिमाओं के निर्माण का समय मौर्य और शुंग युग से पहले या आसपास का है। अधिकांशतः प्रतिमाएं ग्वालियर और मथुरा के समीप मिली हैं। मूर्तियां काफी भारी और बड़े आकार की हैं। अग्रभाग पर कारीगरी है और पृष्ठ भाग सादा है। मूर्तियां सामान्य वस्त्र धारण किए हुए हैं। घुटनों तक धोती, सामान्य आभूषण और कभी-कभी चौरी धारण किए हुए हैं। कल्पसूत्र में चौरी को शुभ माना गया है।

बौद्ध कला में यक्षों को बुद्ध के सेवक के रूप में प्रदर्शित किया गया है। वे बुद्ध के संरक्षक भी हैं। गान्धार कला में वज्रपाणि अदृश्य रहकर भी बुद्ध के सदैव साथ हैं।

जैन कला में भी यक्षों को तीर्थंकरों के सेवक और संरक्षक के रूप में दिखाया गया है। यक्षों के हाथों में युद्ध के विभिन्न आयुध हैं जिससे वे अपने स्वामी की रक्षा करते हैं। एक जैन कथानुसार पार्श्वनाथ अहिच्छत्र के निकट तप कर रहे थे। उनके शत्रु राक्षस ने भयकर वृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया जिससे कि पार्श्वनाथ जल प्रवाह में फंसकर बह जाए। पार्श्वनाथ के शासन देवता धरणेन्द्र यक्ष ने नागफण बनाकर पार्श्वनाथ के ऊपर छत्र बना दिया। धरणेन्द्र ने पार्श्वनाथ के नीचे गेंडुली बनाकर उस पर पार्श्वनाथ को आसीन कर दिया जिससे नीचे बहते हुए पानी से भी उनकी रक्षा हो गई। राक्षस के प्रयत्न असफल हो गए। यक्षों के हाथ में पुष्प या बीजपूरक होता है जो कि उनके शान्ति और सौम्य स्वभाव को प्रकट करता है।

यक्षों ने अधिकतर अपना नाम ब्राह्मण सम्प्रदाय के देवताओं से लिया है। यक्ष-यक्षणियां ब्रह्मा, ईश्वर, षडमुख, काली, महाकाली, अम्बिका और गौरी आदि नामों से जाने जाते हैं। नामों के अतिरिक्त वाहन तथा अन्य प्रतिमा शास्त्रीय लक्षण भी उन्होंने ब्राह्मण देवी-देवताओं से लिए हैं। अधिकतर यक्ष पूर्णतः मानवीय रूप में प्रदर्शित नहीं किए गए हैं अपितु अर्धमानव या अर्धपशु रूप में दिखाए गए हैं। गोमुख यक्ष का मुख वृषभ का है परन्तु शरीर मनुष्य का। यह विशेषता भी तो ब्राह्मण धर्म से ही ली गई है। सिन्धु घाटी सभ्यता काल की कुछ मुहरें इस प्रक्रिया को स्पष्ट करती हैं।

अध्याय : चौदह

गौण जैन देवताओं पर ब्राह्मण देवताओं की छाप

समय-समय पर विभिन्न धर्म के अनुयायियों ने सम्भवत: वैमनस्यता की भावना से प्रेरित होकर अपने धर्म के देवताओं को दूसरे धर्म के देवताओं से उच्च सिद्ध करने का प्रयास किया है। नरसिंह प्रतिमा की रचना का मुख्य ध्येय विष्णु को शिव से श्रेष्ठ ठहराना है। ठीक इसी प्रकार शिव की शरव मूर्ति विष्णु पर उनकी श्रेष्ठता प्रदर्शित करती है। शायद इसी भावना ने जैन धर्म के अनुयायियों को तीर्थंकरों को ब्राह्मण धर्म के देवताओं से उच्च ठहराने के लिए प्रेरित किया होगा। जिन प्रतिमाओं के विकास की पचम अवस्था मे उनके साथ सेवक-सेविका के रूप मे यक्ष-यक्षणियों को दिखाया गया है जिनको शासन देवता भी कहते हैं। जिन प्रतिमाओं के दाहिनी ओर यक्ष तथा बाईं ओर यक्षिणी रहती हैं। चौबीस तीर्थंकरों की अलग-अलग यक्ष-यक्षणिया है। इन यक्ष-यक्षणियों के नाम हिन्दू धर्म के श्रेष्ठ देवी-देवताओं के नाम है जैसे ईश्वर, ब्रह्मा, कुमार, कुबेर, चक्रेश्वरी, काली महाकाली, गौरी इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन-शिल्पियों ने तीर्थंकरों को हिन्दू देवताओं से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयास किया है।

आचारदिनकर, उत्तराध्यायन सूत्र और अभिदानचिन्तामणि आदि जैन ग्रंथ इस धर्म के गौण देवताओं को चार वर्गों मे विभक्त करते हैं : ज्योतिषी, विमानवासी, भवनपति और व्यन्तर। जिन प्रतिमाओं को छोड़कर जिन अन्य देवताओं की प्रतिमाए जैन प्रतिमा कला मे पाई जाती है उनमे दस दिकपाल : इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, पातालाधीश्वर नागदेव, ऊर्ध्व-लोकाधीश्वर ब्रह्मा, नवग्रह : रवि, सोम, भौम, बुद्ध, गुरु, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु और तीर्थंकरों के सेवक-सेविकाए यक्ष-यक्षणियां सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त सोलह विद्यादेवी, याश्रुति देवी, अष्टमातृका, चौसठ योगिनी, श्री या लक्ष्मी, भैरव, गणेश, क्षेत्रपाल आदि का भी प्रदर्शन जैन प्रतिमा कला मे देखने को

मिलता है। इनमें से अधिकांश के नाम और प्रतिमाशास्त्रीय लक्षण ब्राह्मण धर्म के देवी-देवताओं से मिलते हैं। प्रारम्भिक एवं मध्यकालीन जैन कला में इनमें से कुछ का प्रदर्शन कभी-कभी विचित्र रूप से हुआ है। हरिणेगमेसि या नैगमेय का प्रतिमा शास्त्रीय रूप, जो कि जैन परम्परा के अनुसार देवराज इन्द्र के सेनापति हैं, हमें हिन्दू पौराणिक बकरे के मुख वाले यक्ष प्रजापति का या स्कन्द कार्तिकेय के छागवक्त्र बकरी के समान मुख वाले रूप का स्मरण करा देता है।

शासन देवताओं की हिन्दू उत्पत्ति का बोध भी उनके प्रतिमा शास्त्रीय लक्षणों से होता है। ऐसा लगता है कि हिन्दू देवी-देवताओं को जान-बूझकर जैन तीर्थंकरों के अनुचर-अनुचरी रूप में प्रस्तुत किया गया है।

गोमुख यक्ष—गोमुख यक्ष प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ का शासन देवता है। यक्ष का मुख वृषभ और आसन वृष है। यक्ष परशु और पाश धारण किए है। यह शिव से ही उद्भूत किया गया होगा जैसा कि वृषभासन, परशु और पाश से स्पष्ट है। नन्दि शिव का सूचक है।

ब्रह्मा—दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ का यक्ष ब्रह्मा है। ब्रह्मा के चार मुख, आठ हाथ तथा आसन पद्म है। वह अपने आठ हाथों में पद्म, बीजपूरक, पाश, माला, धनुष आदि धारण करते हैं। उनके आयुधों में से कुछ आयुध ब्राह्मण-धर्मीय ब्रह्मा से नहीं मिलते, फिर भी इनका नाम चतुरानन, कमलासन और माला यह स्पष्ट करते हैं कि यह ब्राह्मणधर्मीय ब्रह्मा ही हैं।

ईश्वर यक्ष—ग्यारहवें तीर्थंकर श्री अरनाथ का यक्ष ईश्वर है जिसका वाहन वृषभ है। यक्ष के त्रिनेत्र और चार भुजाएं हैं जिनमें वह त्रिशूल, दण्ड, माला इत्यादि धारण किए हुए हैं। ईश्वर की यक्षिणी का नाम गौरी है। चौथे तीर्थंकर अभिनन्दननाथ का यक्ष श्रीईश्वर है और यक्षिणी काली है। ईश्वर सम्भवतः शिव का ही समरूप है।

षडमुख यक्ष—षडमुख यक्ष तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ के शासन देवता हैं। षडमुख का वाहन मयूर है। वह अपने बारह हाथों में फल, बाण, खड्ग, पाश, माला, नेवला, चक्र, अंकुश, बन्धन इत्यादि धारण करते हैं। षडमुख यक्ष ब्राह्मणधर्मीय कुमार षडानन का प्रतिरूप है।

इन यक्षों के अतिरिक्त कुमार, गरुड़, कुबेर, वरुण जो कि क्रमशः वासुपूज्य, शान्तिनाथ, मल्लिनाथ और मुनि शुव्रतनाथ के शासन देवता हैं, के प्रतिमा विज्ञान सम्बन्धी लक्षण इस बात को और भी स्पष्ट कर देते हैं। यक्षणियों के नाम जैसे चक्रेश्वरी, कालिका, महाकाली, गौरी, चामुण्डा, अम्बिका, पद्मावती आदि ब्राह्मण धर्म से लिए गए हैं। इनके प्रतिमा शास्त्रीय लक्षण इनके ब्राह्मणधर्मीय देवी स्वरूप की झांकी प्रस्तुत करते हैं.

चक्रेश्वरी—प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी है। ...

चार या आठ भुजाएं हैं। वह अपनी अष्ट भुजाओ मे बाण, चक्र, पाश, धनुष, वज्र, अंकुश आदि धारण करती हैं। चतुर्भुजी होने पर उनके दो हाथो मे चक्र रहते हैं। उनका वाहन गरुड़ है। सम्भवत: यक्षिणी चक्रेश्वरी विष्णु की पत्नी चक्रेश्वरी का प्रतिरूप है।

महाकाली—पाचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ की यक्षिणी महाकाली चतुर्भुजी हैं। वह अपनी भुजाओं मे पाश और अंकुश धारण करती है। इनका नाम और प्रतिमाशास्त्रीय लक्षण ब्राह्मणधर्मीय महाकाली से लिए गए हैं।

गौरी—गौरी ग्यारहवें तीर्थंकर अरनाथ की यक्षिणी हैं। इनका वाहन बारहसिंगा और आयुध गदा, कमल ऊर्ण हैं। इनके यक्ष का नाम ईश्वर है। वह शिव पत्नी गौरी का प्रतिरूप हैं।

चामुण्डा—इक्कीसवें तीर्थंकर नमीनाथ की यक्षिणी चामुण्डा हैं जिनका वाहन मकर है। वह अपने हाथो मे दण्ड, ढाल और खड्ग धारण करती हैं।

अम्बिका—बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की यक्षिणी अम्बिका हैं। इनका वाहन सिंह है। यक्षिणी की भुजाओ मे आमों का गुच्छा, पाश, बालक और अंकुश हैं। इनका नाम कुष्माण्डिनी भी है। कुष्माण्डिनी दुर्गा देवी का एक नाम है जो कभी-कभी सात स्त्रियों के साथ नृत्य करती दिखाई जाती है।

पद्मावती—तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की यक्षिणी पद्मावती हैं। ये चतुर्भुजी हैं और अपने हाथो मे अकुश, माला और दो कमल धारण करती हैं। इनकी पहचान मनसा, जिनका एक नाम पद्मा भी है, से की जाती है।

जैनों के क्षेत्रपाल भैरव और गणेश ब्राह्मणधर्मीय देव गणेश और भैरव हैं। गणेश अपने चार हाथों मे से दो हाथो मे मोदक और कुल्हाड़ी लिए हुए हैं और उनके दो हाथ अभय और वरद मुद्रा मे हैं। इनका वाहन भी मूषक है। जैनधर्मीय श्री या लक्ष्मी, जिनकी पूजा जैन धर्म के अनुयायी प्राचीन काल से ही करते आ रहे हैं, ब्राह्मणधर्मीय लक्ष्मी की ही प्रतिरूपा हैं। ये चतुर्भुजी हैं और अपने हाथों में कमल धारण करती हैं। ब्राह्मण देवी-देवताओं के जैनी प्रतिरूप और उन्हे जैन धर्म मे दिया गया गौण स्थान जैन धर्म के अनुयायियो का तीर्थंकरो को ब्राह्मण देवताओ से उच्च एवं श्रेष्ठ सिद्ध करने का एक सफल प्रयास है। किन्तु उनकी यह भावना उनके शासन देवताओं को मौलिक रूप न प्रदान कर सकी जो जैन प्रतिमा विज्ञान के क्षेत्र मे एक अनोखी देन होती।

अध्याय : पन्द्रह

बुद्ध का सांकेतिक प्रदर्शन

किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायियों ने प्रारम्भिक अवस्था में अपने आराध्य का प्रदर्शन प्रतीकों के माध्यम से किया, चाहें वे ब्राह्मण देवता शिव या विष्णु हों, या जैनियों के तीर्थंकर। शिव को त्रिशूल द्वारा, विष्णु को चक्र के माध्यम से और तीर्थंकरों को विभिन्न प्रतीकों द्वारा प्रकट किया जाता था। बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने भी प्रतीक माध्यम को अपनाया। प्राचीन बौद्धकालीन कला में बुद्ध का आभास प्रतीकों द्वारा कराया गया है। बुद्ध का सांकेतिक प्रदर्शन सांची, भरहुत, बोधगया एवं अमरावती में देखने को मिलता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि प्राचीन बौद्धकालीन कला में बुद्ध का मानविक रूप इस कारण प्रदर्शित न किया जा सका कि तत्कालीन कलाकार मानव-आकृतियों की रचना करने में अभ्यस्त न थे। परन्तु यह विचार तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि बुद्ध के पूर्व जन्मों को मानवाकृतियों में ही दिखाया गया है। दीर्घनिकाय के ब्रह्मजाल सूत्र में बुद्ध स्वयं कहते हैं कि "जब तक शरीर है, इसे देवता तथा मानव देख सकते हैं, परन्तु मृत्यु के उपरान्त यह देवता तथा मानव सभी के लिए अगोचर हो जाएगा।" सम्भवतः इसी कारण से बुद्ध को मानवाकृति में कहीं भी चित्रित नहीं किया गया होगा।

स्वाभाविक-सा प्रश्न उठता है : यदि बुद्ध को मानवाकृतियों द्वारा प्रकट नहीं किया गया तो प्रतीकों द्वारा क्यों प्रदर्शित किया गया? बुद्ध की प्रतीकोपासना की पृष्ठभूमि में एक घटना है। एक बार गौतम बुद्ध श्रावस्ती में विराजमान थे और अल्प समय के लिए कहीं गए हुए थे। ग्रामवासी बुद्ध के दर्शन हेतु आए और उनकी अनुपस्थिति में उपहार उनके आसन के पास रखकर चले गए। अनाथपिण्डक तथा बुद्ध के अन्य उपासकों को यह देखकर दुःख हुआ। उन्होंने गौतम बुद्ध के अनन्य भक्त आनन्द से निवेदन किया कि उन्हें बुद्ध की चिरस्थायी प्रतिमा बना लेना चाहिए जिससे कि उनकी अनुपस्थिति में भी उपासक उनकी पूजा कर सकें। आनन्द ने इस निवेदन को बुद्ध के सम्मुख रखा।

बुद्ध ने उत्तर दिया कि पूजा तीन रूपों : शारीरिक, परिभौतिक और उद्देशिक में की जा सकती है। जो इन तीन रूपों में किसी भी रूप की पूजा करेगा, उसे वही फल प्राप्त होगा जो कि उनकी व्यक्तिगत पूजा से। प्रथम प्रकार की पूजा उनके जीवन तक ही सम्भव थी। द्वितीय कोटि में उनके जीवन के उपभोग मे आने वाली वस्तुएं एवं स्थल आते हैं। तृतीय कोटि उनके सिद्धान्तों से सम्बन्धित है। ये सभी प्रतीक कलाकारों द्वारा स्वतन्त्र रूप से सांची, भरहुत तथा अन्य स्थलों पर उपयुक्त किए गए हैं।

बुद्ध का शारीरिक प्रदर्शन—भरहुत के शिल्पियों ने बुद्ध के केश या सिर वस्त्र को चित्रित किया है। साची में इसी को देवों सहित चित्रित किया गया है। भरहुत की शिल्पकला मे एक मन्दिर दर्शाया गया है जिसमे बुद्ध की अस्थियों पर बुद्ध के सिर-वस्त्र की स्थापना है। इसकी सतह पर "भागवत चूडामदो" भी अंकित है। तैंतीस देवताओं का भी प्रदर्शन है।

पारिभौतिक प्रदर्शन

बुद्ध का परिभौतिक प्रदर्शन कई माध्यमों से किया गया है:

सिंहासन—बुद्ध का सिंहासन बोधिवृक्ष के नीचे दिखाया गया है। भरहुत के अजातशत्रु स्तम्भ पट पर शिल्पियों ने सिंहासन मध्य मे दिखाया है इसके पीछे छत्र है एवं मालाएं टंगी हुई हैं। सिंहासन पर फूल-पत्तियों का ढेर लगा है जो कि बुद्ध की उपस्थिति का सकेत है। सांची मे बडा ही मनोरजक दृश्य देखने को मिलता है। एक घसियारा बुद्ध के बैठने के स्थान के सम्मुख घास के गुच्छे देते हुए दिखाया गया है। साची के ही एक अन्य दृश्य मे बुद्ध के बैठने के स्थान के सम्मुख एक बन्दर अपने हाथ में प्याला लिए खडा है।

बुद्धपद—भरहुत मे अजातशत्रु को बुद्ध के पास खड़ा दिखाया गया है। सिंहासन पर बुद्ध के चरण चिह्न प्रदर्शित हैं एवं "अजातशत्रु भगवतो वन्दते" अंकित है। साची स्थापत्य मे भी बुद्ध की कपिलवस्तु यात्रा को उनके चरण चिह्नों द्वारा प्रकट किया गया है।

बोधिवृक्ष—बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था। उनके सिंहासन को बोधिवृक्ष के नीचे दिखाया गया है। शाक्य मुनि के अनुसार उनकी पूजा और बोधिवृक्ष की पूजा समान है। सांची में बोधिवृक्ष की पूजा करते हुए केवल देवताओं या मनुष्यों को ही नहीं दिखाया गया है वरन् पशुओं को भी बोधिवृक्ष की पूजा करते हुए दर्शाया गया है। भरहुत मे बोधिवृक्ष के पास भोग्जान को हाथ जोड़े घुटने टेके दिखाया गया है। बोधगया मे तीन हाथियों को बुद्ध की पूजा करते दिखाया गया है।

चक्रम—बुद्ध को कपिलवस्तु में घूमते चक्रम द्वारा ही प्रकट किया गया है।

भरहुत स्थापत्य में चक्रम का प्रदर्शन देखते ही बनता है।

उद्येशिक प्रदर्शन

स्तूप—बुद्ध के परिनिर्वाण का प्रदर्शन स्तूप माध्यम से किया गया है। सांची मे स्तूप पर छत्र दर्शाया गया है जो कि बुद्ध के परिनिर्वाण का द्योतक है। बोध-गया मे यक्ष स्तूप को अपने सिर पर ले जा रहे हैं।

धर्मचक्र—भरहुत मे धर्मचक्र को सजाया गया है और इसके पास "भगवतो धर्मचक्रम्" अंकित है। साची मे धर्मचक्र को छत्र सहित दिखाया गया है। देवतागण एव मनुष्य इसकी पूजा कर रहे हैं। कभी-कभी 32 रेखाओ द्वारा महापुरुष के 32 लक्षणो का भी प्रदर्शन है।

त्रिरत्न—त्रिरत्न बौद्ध धर्म का प्रमुख चिह्न है। त्रिरत्न का सांची स्थापत्य मे कई बार प्रदर्शन हुआ है। बोधगया मे त्रिरत्न को सिंहासन पर रखा दिखाया गया है।

इसके अतिरिक्त प्रतीकों द्वारा बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनाओ का भी चित्रण किया गया है:

जन्म—बुद्ध के जन्म का प्रदर्शन बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है। बुद्ध की मा माया देवी को हाथी जल से स्नान कराते हुए दिखाये गए हैं जो कि बुद्ध के जन्म का प्रतीक है।

ज्ञान प्राप्ति—बोधिवृक्ष बुद्ध की ज्ञान प्राप्ति का प्रतीक है।

प्रथम उपदेश—धर्मचक्र बुद्ध के प्रथम उपदेश का सूचक है।

परिनिर्वाण—स्तूप बुद्ध के परिनिर्वाण के परिचायक हैं।

अध्याय : सोलह

बुद्ध प्रतिमा की उत्पत्ति

बुद्ध प्रतिमा की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में तीव्र मतभेद है। वास्तव में यह प्रश्न गांधार, मथुरा, यूनान और भारत का है। प्रारम्भिक भारतीय कला में बुद्ध का प्रदर्शन मानव रूप में न होकर प्रतीक रूप मे प्राप्त होता है। जबकि गांधार कला मे बुद्ध की अनेक मानव आकृतियां पाई गई हैं। शायद इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने सुझाया है कि बुद्ध को मानव रूप मे प्रदर्शन करने का प्रचलन विदेशीय है। इसका स्रोत यूनान है। गाधार कला में बुद्ध का प्रदर्शन अपोलो के नमूने पर किया गया है। बुद्ध प्रतिमाएं इसी यूनानी रूप का भारतीयकरण हैं।

मथुरा से कुषाणकालीन बुद्ध मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो अपनी शैली, भाव एवं रूप में पूर्णतः भारतीय हैं। कुमार स्वामी का मत है कि मथुरा और गांधार में बुद्ध प्रतिमाएं साथ-साथ बनी। ईसवी सन के प्रादुर्भाव के साथ ही दोनों स्थानों से प्राप्त कुछ प्रतिमाए दिनांकित हैं, किन्तु अज्ञात तिथियों मे अंकित होने के कारण ये प्रतिमाएं अपने निर्माण के समय काल पर अभी तक प्रकाश न डाल सकी।

यह सत्य है कि प्रारम्भिक भारतीय कला में बुद्ध का अंकन मानव रूप में नही है, परन्तु इससे भारतीय कलाकारों की बुद्ध को मानव रूप में अंकन करने की अक्षमता कदापि सिद्ध नही होती। इन्ही स्थानों पर बुद्ध के पूर्व जन्मों को पूर्णतः मानवीय रूप में अंकित किया गया है। बुद्ध के जीवन की घटनाओं को संकेतों द्वारा मनोरम ढंग से प्रस्तर पर तराशा गया है। फिर भारतीय कलाकार प्राचीन काल से ही हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां बनाने में दक्ष थे और बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण करना उनके लिए कोई कठिन कार्य नहीं था। जो शिल्पी यक्षों, नागों को इतने सुन्दर ढंग से निर्मित कर सकते थे, जो शिल्पी भरहुत एवं सांची में दृश्यों को इतने अनुपम ढंग से अंकित करने मे समर्थ थे, वे अवश्य ही बुद्ध प्रतिमा बना सकते थे और आगे चलकर उन्होंने इस कार्य को बड़ी दक्षता से

किया भी। इन दक्ष शिल्पियों को बाहरी शिल्पियों का इस कार्य में सहारा भी क्योंकर लेना पड़ा होगा? शायद इन्हीं ठोस तर्कों एवं मथुरा कला को पूर्णतः भारतीय शैली के आधार पर कुछ विद्वानों ने ठीक ही कहा है कि मथुरा की बुद्ध प्रतिमाएं किंचित् मात्र भी गाधार कला से प्रभावित नहीं हैं और स्वय में पूर्णतः भारतीय एव अनोखी हैं। गुप्तकाल और उत्तर गुप्तकाल की बुद्ध प्रतिमाएं आध्यात्मिक ज्ञान को उस अवस्था को प्रकट करती हैं जो योरपीय मनोविज्ञान के लिए विदेशी है। किन्तु वहा हम स्वाभाविकता से शायद परे हटते हैं, जहां हम यह मानने से पूर्णतः इन्कार करते हैं कि भारतीय कलाकार यूनानी कला के कुछ विलक्षण तत्वो से या यूनानी कलाकार भारतीय शिल्प या मूर्ति कला के विशिष्ट तत्वो से प्रभावित ही नही होंगे। कला या साहित्य की कोई परिधि ही नहीं है। यह सार्वभौमिक है।

बुद्ध का प्रदर्शन तीन खड़ी, बैठी और लेटी हुई अवस्थाओं में किया गया है। बैठी हुई बुद्ध प्रतिमाएं पाच मुद्राओं : ध्यानमुद्रा, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा एवं धर्मचक्र प्रवर्तन या व्याख्यान मुद्रा मे हैं। ध्यानमुद्रा मे पद्मासन पर बैठे बुद्ध के दोनो हाथ उनकी गोद मे रखे रहते हैं और वह ध्यानमग्न रहते हैं। अभय मुद्रा में उनका बाया हाथ उनकी गोद में और दाहिना हाथ हथेली सामने किए ऊपर सीने तक उठा रहता है। वरद मुद्रा मे बायां हाथ उसी अवस्था मे और दाहिना हाथ हथेली सामने किए घुटनो पर रहता है। भूमिस्पर्श मुद्रा मे बायां हाथ उसी प्रकार है। दाहिने हाथ की अंगुली भूमि की ओर संकेत कर रही है। धर्मचक्र मुद्रा मे बुद्ध दोनो हाथ सीने तक किए हुए हैं और उनकी हथेली सामने की ओर हैं। बुद्ध की खड़ी प्रतिमाओं मे उनका दाहिना हाथ अभय या वरद मुद्रा में हो सकता है और बायां हाथ बगल मे रहता है। बुद्ध की हथेली और पैरो पर कुछ शुभ चिह्न रहते हैं। अन्य विशेषताओं में बुद्ध के सिर पर उष्णीय या ऊर्ण दर्शाया गया है। ऊर्ण भौहों के मध्य दिखाया गया है। सिर पर तीन इंच दाहिने की ओर मुडे लम्बे घुघराले बाल है और कान बड़े-बड़े हैं। बोधिसत्व राजकीय वेशभूषा से अलंकृत हैं और वे अपने हाथों में कमल, वज्र, पद्म, अमृतघट आदि लिए रहते हैं।

यह तीनो प्रकार की प्रतिमाएं यक्ष मूर्तियों के नमूने पर बनाई गई हैं। बोधिसत्वों और यक्षों की प्रतिमा में थोडा अन्तर है जबकि बुद्ध प्रतिमा भिक्षु भेष मे यक्ष प्रतिमा के समरूप है। भारतीय कलाकारों ने बुद्ध को दो रूपो : योगी या शिक्षक रूप मे प्रदर्शित किया है। बुद्ध के यह दोनो प्रकार भरहुत स्थापत्य मे प्राप्त हैं। योगी रूप की प्राचीनता तो सिन्धु घाटी सभ्यता से है। हड़प्पा तथा मोहनजोदडो से प्राप्त मुद्राओं पर योगी रूप देखने को मिलता है। भरहुत में दीघ तापस का प्रदर्शन है जो कि अपने शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं। यहीं पर ही

एक अन्य स्थान पर बुद्ध का अंकन अपनी पर्णशाला में हुआ है।

मउग और कदफाइसेस की मुद्राओं पर उपलब्ध समान प्रदर्शन ध्यान मुद्रा में बैठी हुई बुद्ध मूर्तियों के बहुत समान हैं। इन मुद्राओं पर अंकित स्वरूप को कुछ विद्वान बुद्धाकृति तथा कुछ स्वयं सम्राट का ही प्रदर्शन मानते हैं। कदफाइसेस की मुद्राओं पर प्राप्त प्रतिमा बुद्ध प्रतिमाओं से अधिक साम्यता रखती है। जहां तक प्रतिमा के सिर पर दिखाए गए उष्णीष का प्रश्न है बोधगया की एक रेलिंग पर इन्द्र का उष्णीष दर्शाया गया है। रेलिंग का समय 100 ई० पू० माना गया है। बुद्ध की मूर्ति के प्रादुर्भाव से पूर्व भी प्राचीन भारतीय कला में कई स्थानों पर घुंघराले बालों का प्रदर्शन मिलता है।

ये तथ्य हमें सरलता से इस निष्कर्ष पर ले जाते हैं कि मथुरा के शिल्पियों ने बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण स्वतन्त्र रूप से किया। पाश्चात्य विद्वान स्वयं इस तथ्य से इन्कार नहीं करते। वे साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि मथुरा कला की बौद्ध प्रतिमाएं गांधार कला की अपेक्षा भद्दी हैं। यदि मथुरा के शिल्पी गांधार कला की बुद्ध मूर्तियों की नकल ही करते तो वे बुद्ध प्रतिमाओं को गांधार कला की प्रतिमाओं से अधिक सुन्दर बना सकते थे। गांधार और मथुरा की प्रतिमाएं स्वतन्त्र रूप से बनी और वे अपनी-अपनी शैली की अनोखी कृतियां हैं। यह कह पाना सम्भव नहीं है कि किन प्रतिमाओं का निर्माण सर्वप्रथम हुआ। कुमार स्वामी महोदय का कथन ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि मथुरा एवं गांधार में बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण साथ-साथ हुआ।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

बाल्मीकीय रामायण भाग 1-2 : गीता प्रेस गोरखपुर, सं० 2017
महाभारत : पूना, 1929-33
श्रीमद्भागवत पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
अग्नि पुराण : आनन्दाश्रम प्रेस, पूना
गरुड़ पुराण : पण्डित पुस्तकालय, काशी
कूर्म पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
देवी भागवत पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
मत्स्य पुराण : गुरुमण्डल सीरीज, कलकत्ता
मारकण्डेय पुराण : वी० आई० सीरीज, कलकत्ता
ब्रह्म पुराण : आनन्दाश्रम प्रेस, पूना
लिंग पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वराह पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वायु पुराण : आनन्दाश्रम प्रेस, पूना
विष्णु पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
विष्णु धर्मोत्तर पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
स्कन्द पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
वृहत संहिता : वराहमिहिर
शिल्परत्न : त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, 1922
अपराजित पृच्छा शिल्प रत्नाकर : नर्मदा शंकर मुलजी, धांगध्रा, 1936
रूपमण्डन नाट्य शास्त्र : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1929
अर्थशास्त्र : कौटिल्य

Bibliography

A

Agarwala, V.S. : A short guide-book to the Archaeological Section to the Provincial Museum, Lucknow, Allahabad, 1940

Agarwala, V.S. : Hand book of Sculptures in the Curzon Museum of Archaeology, Mattra, Allahabad, 1939

Agarwala, V.S. : Catalogue of Mathura Museum

Agarwala, V.S. · India as known to Panini, Lucknow, 1953

Agarwala, V.S. : Indian Art, Varanasi, 1965

Agarwala, V.S. : Vaman Purana—A study, 1964

Agarwala, V.S. : A Catalogue of the Brahmanical Images in *Mathura Art (Journal of* U.P. Historical Society—Vol. XXII, Parts 1—2, 1949)

Agarwala, V.S. : Gupta Art, Historical Society, Lucknow, 1948

Aravamuthan, T.G. : Ganesh, Madras, 1951

B

Bhandarkar, R G : Vaishnavism, Saivism and Minor Religions Systems, Strassburg, 1913

Bidyabinod, B.B. : Varieties of Vishnu Image (Memoirs of Archaeological Survey of India, No. 2)

Burgess, J. : The Buddhist Stupas of Amravati and Jaggayyapeta, London, 1887

Banarjea, J.N. : The Development of Hindu Iconography, 2nd Edition, Calcutta, 1956

Banarjea, J.N. : Religion in Art and Archaeology (Vaishnavism and Saivism), Lucknow, 1968

Bhattacharya, B.C. : Indian Images, Pt. I & II Calcutta, Simla, 1921

Bhattacharya, B.C. : *Jain Iconograpy, Lahore, 1939*

Bhattasali, N.K. : Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures in Decca Museum, Decca, 1929

Banerji, R.D. : *Eastern Indian School of Mediaeval* Sculpture, Delhi, 1933

Burua, B.M. : Bharhut, Calcutta, 1934-37

Bloomfield : Religion of the Vedas

Basham, A.L. : Wonder that was India, London,

C

Chakladar : Social life in Ancient India, Calcutta, *1929*

Chanda, R.P. : Mediaeval Indian Sculptures in British Museum, London, 1936

Chanda, R.P. : Archaeology and Vaishnava Tradition (Memoirs of Arch. Surv. India—No. 5)

Coomaraswami, A.K. : Yaksas, Pt. I & II Washington, 1928

Coomaraswami, A.K. : History of Indian and Indonesian Art

Coomaraswami, A.K. : Arts and Crafts of India and Ceylon, London, 1913

Chatterjee, V C. : Indian Images.

Chandra, Dinesh : Town Planning in Ancient India—from the earliest times to the beginning of Christian era—Thesis, University of Lucknow, 1967.

D

Deshmukh, P.S. : Origin and Development of Religion in Vedic literature

Dasgupta, S.N. and De, S.K. : History of Sanskrit Literature, Calcutta, 1947

Datta, R.C. : A History of civilization in Ancient India

F

Foucher, A The beginnings of Buddhist Art (Translated in English by R. A. Thomas and F.W. Thomas, London, 1914)

Farguhar, J.N. : Outline of the Religious literature of India

Fergusson, J. : Tree and Serpant worship in India

G

Gouda, J. : Aspects of early Vishnuism, Uttrecht, 1954

Getty, Alice : A monograph of elephant face God, oxford, 1936

Ganguli, M. : Hand book to the Sculptures in the Museum of Bangiya Sahitya Parishad, Calcutta, 1922

Grunwedel, A : Buddhist Art in India, London, 1901

Gangoly, O.C. : South India Bronzes, Calcutta, 1914

Ganguli M. : Orissa and Her Remains, Ancient and Mediaeval, Calcutta, 1912

Gordon, D.H. : The Prehistoric Background of Indian Culture, Bombay, 1958

H

Hopkins : The great Epic of India

Hopkins : Religion of India

Hopkins : Epic Mythology

Havell, E.B. : Hand book of Indian Art, London, 1920

Havell, E.B. : The Ideals of Indian Art, London, 1911

Havell, E.B. : History of Aryan Rule in India

Hildebrandt : Vedic Mythology

Hopkins, E.W. : India old and New, 1902

K

Kramirisch, Stella : Indian Sculpture, Calcutta, 1933

Kramrisch, Stella : Art of India through the Ages, London, 1954

Kane, P.V. : History of Dharmsastras, Vol. I - III Poona, 1941

Kramrisch, Stella : The Hindu Temple, 2 Vols. Calcutta, 1946

Karambelkar, V.W. : The Atharvedic civilization, its place in Indo-Aryan Culture, Nagpur, 1959

Keith, A.B : A short History of Sanskrit Literature, 1941

Keith, A.B : Religion and Philosophy of Veda

Kosambi, D.D. : Myth and Reality, Bombay, 1962

Kuraishi, M.H. and Ghosh : Guide to Rajgir, Delhi, 1939

Krishnamchari, M. : History of classical Sanskrit literature, Madras, 1937

L

Law, B.C. : Rajgriha in Ancient literature

M

Macdonell, A.A. : Vedic Mythology, Strassburg, 1979

Macdonell, A.A. and Keith, A.B : Vedic Index of names and Subjects 2 Vols, London, 1912

Macdonell : The Vedic Gods

Marshall, J. · A guide to Taxila, Calcutta, 1918 3rd Ed. Delhi, 1936

Marshall, J. . Guide to Sanchi, Calcutta, 1918, 3rd Ed 1955

Marshall, J. : Mohanjo-daro and the Indus civilization, Vols 3, London, 1931

Marshall, J. and Foucher, A : Monumnts of Sanchi, 3rd Vols., Calcutta, 1940

Max Muller : Sacred Books of the East

Muir : Hindu Pantheon

Mankad, D.R. , Pauranic Chronology, First Ed. 1951

Majumdar, N.G. : A guide to the Sculptures in the Indian Museum, Part II Delhi, 1937

Mackay, E.J.H. : Further Excavations at Mohanjo-daro, London, 1937, Delhi, 1938

Mackay, E.J.H. : Early Indus civilization, 2nd Edition, London, 1948

Mitra, R. : Buddhya Gaya, Calcutta, 1878

Mahadeva Nandagiri : Vedic Culture

Majumdar, R.C. : Classical Accounts of India, Culcutta, 1960

Majumdar, R.C. and Pusalkar, A.D. : The Vedic Age..... History and Culture of Indian people, Vol. I, London, 1951

Mehta, R.N. : Pre-Buddhist India, Bombay, 1939

P

Piggott, Stuart : Prehistoric India, 1953

Pusalkar, A.D. : Studies in Epics and Puranas, Bombay 1955

Pragiter : Dynasties of the Kali Age

Pragiter : Ancient Indian Historical Traditions

Pragiter : Encyclopaedia of Religion and Ethics

Piggott, S. : Prehistoric India, Harmondsworth, 1950

Piggott, S. : The Dawn of civilization, London, 1961

Pischel, Richard : *Vedische Studien, 3rd Vol.*

and Geldner, K.F. : Stuttgart, 1889-1901

Puri, B.N. : India in the time of Patanjali, Bombay, 1955

R

Raychaudhury, H C. : Materials for the Study of early History of the Vaishnava Sect, Calcutta, 1936

Rao, T.A.G. : Elements of Hindu Iconography, 2 Vols, Madras, 1914—1915

Renou, Louis . Religions of Ancient India

Renou, Louis : Vedic India, Calcutta, 1957

Ragozin, Z.A. : Vedic India, London, 1899

Ram Gopal . India of Vedic Kalpasutras, Delhi, 1957

Ray, Niharranjan : Maurya and Sunga Art, Calcutta, 1945

Rhys Davids : Buddhist India, 1903

S

Saraswati, S.K. : A Survey of Indian Sculpture, Calcutta, 1957

Smith V.A. : History of Fine Art in India and Ceylon, 3rd Ed., Bombay

Smith, V.A. : The Jain Stupas and other antiquities of Mathura, Allahabad, 1901

Shukla, D.N. : Hindu Canons of Iconography, Lucknow, 1958

Shukla, D N. : Vastu Sastra, Vol. I, Lucknow, 1955

Shukla, Kanchan : Kartikeya in Indian Art and literature, Delhi, 1979

Sastri, H.K. . South Indian Images of Gods and Goddesses, Madras, 1916

Singh, S.D. : Ancient Indian Warfare with special reference to Vedic Age, Leiden, 1965

T

Thaper, D.R. : Icons in Bronze

Thakur, Upendra : On Kartıkeya, Chaukhamba Orientalia, Varanasi, Delhi

U

U.P. Historical Society : Khajuraho

V

Vats, M.S. : Excavations at Harappa, 2 Vols. Delhi, 1940

Vogel, J.Ph, : Catalogue of Archaeological Museum at Mathura, Allahabad, 1910

Vogel, J.Ph. : Indian Serpent lore, London, 1926

Vogel, J.Ph. : La Sculpture de Mathura (Ars Asiatica XV), Paris, 1930

Vaidya, C.V. : Epıc India, Bombay, 1933

W

Weber : Indische Studien

Wheeler, R.E.M. : Early India and Pakistan, London, 1959

Wheeler, R.E.M. : Five Thousand years of Pakistan, London, 1950

Wheeler, R.E.M. : The Indus civilization, 2nd Edn., Cambridge, 1962

Wilkins, W.J. : Hindu Mythology

Winstedt, R. : Indian Art, London, 1947

Wilson, H.H. : Vishnu Purana—A System of Hindu Mythology and Tradition, 3rd Edn., Calcutta, 1961

Z

Zimmer, Heinrich : The Art of Indian Asia, 2nd Vol, New York, 1955

Zimmer, H. : Altindisches Leban, Berlin, 1879